(चाणक्य) इन नव नन्दवंशियों का नाश करेगा । नन्दवंशियों के नष्ट होने पर मौर्य्य शूद्र राजगण पृथ्वी पर भोग करेंगे। चाणक्य इ मौर्य्यवंशीय चन्द्रगुप्त को राज्य पर अभिषिक्त करेगा ।" चन्द्रगु की कथा पुराणों में तो लिखी है किन्तु उसके काल इत्यादि क पता पूरे निश्चय के साथ तब तक नहीं लगा जब तक यूनानी ग्रंथ की छान बीन नहीं की गई । धन्य वह घड़ी थी जिसमें सर विलि यम जोन्स इन पुराणों की नामावली के चन्द्रगुप्त और यूनानियों के 'सैण्ड्राकोटस' (Sandrakottos) में सादृश्य देखक चौंके थे । भली प्रकार जाँच करने पर उन दोनों के गुप्त वृत्तान्तों में भी उन्हें कुछ अन्तर न देख पड़ा । फिर क्या था, चन्द्र को बैक्ट्रिया (बलख) के बादशाह सिल्यूकस का समकालीन मानकर उन्होंने बहुतेरे ऐतिहासिक तत्वों तक पहुँचने के लिये मार्ग खोल दिया । डायोडोरस (Diodorus) का 'ज़न्द्रमस' (Zandramas) भी चन्द्रमस या चन्द्रमा से मिलाया गया जो कि संस्कृत ग्रंथों में चन्द्रगुप्त का नामान्तर है (दे० मुद्राराक्षस)। उसके जन्म की व्यवस्था, राज्य को हस्तगत करने के उपाय, यूनानी और भारतीय दोनों आख्यानों में समान पाए गए । उसके राज्य की स्थिति भी वहीं पाई गई जहाँ मेगास्थिनीज़ ने लिखा था । प्रजा का नाम 'प्रेसिआई' (Prasii) संस्कृत का 'प्राच्य' ही प्रतीत हुआ । सब से बढ़कर मगध की प्राचीन राजधानी 'पाटलि पुत्र' ही यूनानियों की 'पालीबोथ्रा' सिद्ध हुई ।

अतः यूनानी ग्रंथों के अनुसार चन्द्रगुप्त का राजत्वकाल सिकन्दर के प्रस्थान और सिल्यूकस की मृत्यु के मध्यवर्ती काल में होना चाहिए था अर्थात् ३२६ और २८० ई० पू० के बीच में । पर जावा के बौद्ध ग्रंथों में चन्द्रगुप्त का काल ३६२ और ३७६ ई० पू० के बीच ठहरा और लंका के पाली ग्रंथ महावंश के अनुसार ३८१ और ३४७ के मध्य में। पर यूनानियों ही का निर्धा रित समय ठीक माना गया क्योंकि समय निरूपण में विदेशी लो हम लोगों से अधिक विश्वासनीय होते हैं। पहिले तो इस देश इस विषय में यत्न ही नहीं किया गया और यदि कहीं एक आ जगह (जैसे राजतरंगिणी में) किया भी गया तो निष्फल औ भ्रान्तिदायक हुआ। फिर भी, इधर के बौद्ध और पुराणादि

ग्रन्थों में आपस ही में इतना विरोध है कि उनसे कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं हो सकता। इसलिये हमें विदेशी लेखों का ही सहारा लेना चाहिए जो कि अधिक क्रमबद्ध है। अब यह निश्चय होगया है कि चन्द्रगुप्त ३१६ ई० पू० मगध के सिंहासन पर बैठा और २४ वर्ष (२६२ ई० पू० तक) उसने राज्य किया।

अब यह देखना चाहिए कि यूनानियों को भारतवर्ष से किस प्रकार और कब जानकारी हुई। भारतवर्ष से व्यापार की वस्तुएं पश्चिम के देशों में बहुत प्राचीन काल से जाती थीं। यूनानी कवि होमर (८०० वर्ष ई० पू०) से भी पता लगता है कि उस काल में भी भारत की कई वस्तुओं का व्यवहार यूनानी लोग करते थे, जिनके संस्कृत नाम कुछ रूपान्तर के साथ उनके बीच प्रचलित थे। जैसे (Cassiteros) कैसिटरस=जिस्ता और (Elephas) एलिफ़स=हाथीदांत। कैसिटरस संस्कृत का 'कस्तीर' है जिसका अर्थ जिस्ता है यह धातु हिन्दुस्तान के किनारे के टापुओं से जाती थी। 'एलिफ़स' संस्कृत 'इभ' से सम्बन्ध सूचित करता है, 'अल्' शायद अरबवालों ने उसमें जोड़ दिया हो। बाइबिल में भी बहुतसी भारतीय वस्तुओं के नाम हैं। किन्तु ये वस्तुएं एक के उपरान्त दूसरे देशों से होकर यूनान में जाती थीं सीधे भारतवर्ष से उन्हें लेजानेवाला कोई नहीं था। इससे इन वस्तुओं के अन्तिम व्यापारियों से वे उस देश के विषय में जहां से वे जाती थीं कुछ न जान सकते थे।

इसके पीछे पारसी जाति का प्रताप चमका और यूनानियों का अन्धकार दूर हुआ। प्राचीन काल में पारसी जाति बड़ी साहसी और शक्तिसम्पन्न थी। ये पारसी शुद्ध आर्य्यवंश के थे और आर्य्य ही धर्म्म के किसी अंश का पालन करते थे। अग्नि और सूर्य्य की ये आराधना करते थे। बहुत काल तक सारे पश्चिमी एशिया में इनका डंका बजता रहा। साइरस (Cyrus) या कैखुसरो इनमें बड़ा प्रतापी बादशाह हुआ। यह ई० पू० ५५८ के लगभग पारस के सिंहासन पर बैठा। इसी ने एशिया माइनर के पश्चिमी किनारे पर लीडियन (Lydians) आयोनियन (Ionians), और डोरियन (Dorians) लोगों पर चढ़ाई करके विजय प्राप्त की। ये लोग यूनानी थे। लीडिया का बादशाह उस समय क्रीसस

था जो क़ारूं के नाम से प्रसिद्ध है। क़ारूं का ख़ज़ाना अब तक बोल चाल में दृष्टान्त के लिये आता है। यही यूनानी और पारसी जाति की पहिली देखा देखी हुई; इसी काल में एशिया और योरप का समागम हुआ; इस काल में यूनानी लोग भारतसम्बन्धी कथाओं को सुनने के लिये प्रस्तुत हुए। कहा जाता है कि कैख़ुसरो पूर्व की ओर सिन्ध नदी तक बढ़ आया था। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि भारतवासी लोग पारसियों से बहुत प्राचीन काल से परिचित थे।

इसके उपरान्त ४९० ई० पू० में दारा हिस्तस्प (Darius Hystaspes) ने हेलिस्पाण्ट आधुनिक डार्डनल का मुहाना) पार किया और थ्रेसिया और मेसिडोनिया आदि यूनान के उत्तरीय देशों को विजय किया। वह इस चढ़ाई में आधुनिक रूस की जंगली जातियों को परास्त करता हुआ बहुत दूर तक बढ़ गया था। पूर्व की ओर इसने सिन्ध नदी तक अपना अधिकार बढ़ा लिया था। बलख़ और समरक़न्द से लेकर मिश्र और मेसिडोनिया तक इस बादशाह के छत्र के नीचे था।

दारा का पुत्र खशयर्श वा ज़र्क्सीज़ (Xerxes) हुआ जिसने बड़ी भारी सेना लेकर ग्रीस (यूनान) पर चढ़ाई की; वहां के मन्दिरों को लूटा और पुजारियों को क़ैद किया। ४३० वर्ष ईसा से पहिले सलेमिस (Salamis) और मेकाली (Mycalê) की प्रसिद्ध लड़ाइयां हुई जिनका परिणाम यह हुआ कि योरप में मेसिडोनिया और थ्रेसिया का राज्य भी पारसियों के हाथ से निकल गया। धीरे धीरे यूनानी लोग जीविका के लिये पारस में आने लगे जहां के धन और वैभव की बड़ाई से सारा यूनान गूंज रहा था। पारस के बादशाह यूनानी सेना भी अपने यहां नौकर रखने लगे।

इन्हीं पारसी चढ़ाइयों के पीछे ही पहले पहिले यूनानियों को भारतवर्ष की स्थिति आदि से जानकारी हुई। हिकेटैयस (Hekataios of Miletos' ही पहिला इतिहासलेखक है जिसने स्पष्टरूप से इस देश की चरचा की (ई० ५४९-४८६)। हिरोडोटस (Herodotus) ने कुछ विशेष ब्योरे के साथ इस देश और इसके निवासियों के विषय में लिखा। किन्तु इसकी पहुंच सिन्ध नदी ही

तक थी। इसके पीछे यूनानी हकीम टीशियस (Ktesias) ने, ४०१ ई० पूर्व में जब कि वह पारस में बादशाह अर्द्धशीर ममनून (Artaxerxes Memnon) का राजचिकित्सक था, बहुत सी सामग्री भारतसम्बन्धी वृत्तान्त के लिये इकट्ठी की। उसका यूनानी भाषा में इस विषय पर पहिला ग्रन्थ हुआ। किन्तु इसके विवरण किस्से कहानियों से भरे थे; तोते और बन्दरों ही की चरचा इनमें अधिक थी।

अतएव सिकन्दर के साथियों के ही भाग्य में इस देश और इसके निवासियों का ठीक ठीक वृत्तान्त लिखना बदा था। इन्हीं लोगों ने सिन्ध नदी के पूर्व के देशों का हाल पहिले पहल लिखा। सिकन्दर के साथ बहुत से विद्वान पुरुष भी आए थे। बेटो (Baeto), डायोग्निटस (Diognetos), न्यार्कस (Nearchos), आनेसिक्रिटस (Onesikritos). अरिस्टोब्युलस (Aristobulos), कालिस्थिनीज़ (Kallisthenês) इत्यादि के विवरण इसी चढ़ाई के पीछे लिखे गए। ये पुस्तकें अब नहीं हैं किन्तु उनका सारांश स्ट्रैबो (Strabo), प्लिनी (Pliny) और एरियन (Arrian), में उद्धृत मिलता है। सिकन्दर की चढ़ाई भारतवर्षीय इतिहास की खोलनेवाली सब से प्राचीन घटना है इसलिए इसका संक्षिप्त वृत्तान्त पाठकों को मनोरंजक ही नहीं होगा वरन इस ग्रन्थ के पढ़ने में भी सहायता पहुंचाने के लिये आवश्यक होगा।

ऊपर ज़र्क्सीज़ (Xerxes) की चढ़ाई की बात लिखी जा चुकी है जिसका परिणाम यह हुआ कि मेसिडोनिया का बादशाह स्वतंत्र हो गया। अस्सी वर्ष के उपरान्त मेसिडोनिया का बादशाह फ़िलिप हुआ जिसने सारे ग्रीस को मिला कर एक किया। उसके पुत्र महाप्रतापी सिकन्दर ने सिंहासन पर बैठतेही अपने देश की हानियों का बदला चुकाने के लिये पारस की ओर प्रस्थान किया। ३३४ ई० पू० इसने हेलिस्पाण्ट (डार्डेनल का मुहाना) पार किया और वह एशिया माइनर में पहुंचा जहां पर बहुत से यूनानी लोग जो पारस की प्रजा थे उसकी सेना में मिल गए। पारसी साम्राज्य का अधीश्वर उस समय तृतीय दारा (Darius Codomanus) था। इधर तो सिकन्दर सार्डिस (Sardis) तक

अधिकृत कर चुका था और उधर दारा का सब से योग्य सेनापति ममनून (Memnon) दूसरी ही युक्ति बांध रहा था। यह जहाज़ी बेड़ा इकट्ठा करके यूनान की ओर इस अभिप्राय से बढ़ रहा था कि मेसिडोनिया पर जाके आक्रमण करें; और सिकन्दर को अपने देश की रक्षा के लिये लौटना पड़े। किन्तु वह बीच ही में मरगया और पारसी साम्राज्य की रक्षा की आशा भी उसी के साथ चली गई। इसस (Issus) में दारा ने बहुत बड़ी पारसी सेना लेकर सिकन्दर का सामना किया किन्तु वह ठहर न सका। सिकन्दर इफ़रात (Euphrates) और दजला (Tigris) को पार करके असीरिया में आया। यहां अरबेला की अन्तिम लड़ाई हुई और कायर दारा पीठ दिखाकर पूरब की ओर भागा। सिकन्दर बाबिलन पर अधिकार करके खास पारस वा परसिस (Persis–फ़ारस मुहाने के पूर्वी तट का देश) की ओर झुका और उसने सहज ही में सूसा वा शौशन,*परसिपोलिस (Persepolis) और पससगर्द (Passargadæ) आदि पारस की प्राचीन राजधानियों पर अधिकार कर लिया। उस समय मुख्य राजधानी परसिपोलिस ही थी इनसे सिकन्दर को यहां पर बहुत सा खजाना हाथ लगा, उसे एक ज़िन्द आवेस्ता की प्रति भी मिली जो १२००० चर्मखडों पर सोने के अक्षरों में लिखी हुई थी।

इस बीच में दारा (Darius III) इकबटना (आ० हमदन) में इस आशा से पड़ा था कि सिकन्दर को इन तीनों राजधानियों के पाने से सन्तोष हो जायगा और वह लौट जायगा। पर उसकी यह आशा व्यर्थ हुई। जब उसने सुना कि सिकन्दर उसकी ओर बढ़ रहा है तो उसने अपने कुटुम्ब को कैस्पियन सागर के दक्षिण-पूर्व तटस्थ मज़न्दरन (Hyrkania) नाम अबर्जुज के पहाड़ी देश में

---

* मुरगाब के मैदान में इस प्राचीन राजधानी के खँडहर अब तक पड़े हैं। दारा (Darius) और खशयर्श (Xerxes) के महलों के अशेष स्तम्भ, फाटक, और सीढ़ियां इत्यादि अब तक प्राचीन पारसी बादशाहों के महत्त्व का स्मरण दिलाती हैं।

भेज दिया, और आप भी उसी ओर नगर का खज़ाना (७००० टेलंट या १६१०००० पाउँड) लेकर रवाना हुआ और पार्थिया में जा निकला। उसका विचार पारसी साम्राज्य की पूर्वीय सीमा बैक्ट्रिया (बलख़, अफ़ग़ानिस्तान के उत्तर) में भागने का था। किन्तु उसके इस विचार के पूरे होने की संभावना दिन दिन घटती जाती थी। उसके बचे बचाए साथी भी उसे उसकी कायरता से अप्रसन्न होकर धीरे धीरे छोड़ते जाते थे।

दारा को इकबटना छोड़े आठ ही दिन हुए थे कि सिकन्दर उसकी खोज में वहां पहुंचा। यहां पर उसने सूसा और परसिपोलिस आदि नगरों की लूट का माल जमा किया और ७००० मेसिडोनियन सिपाही परमीनियो (Permenio) के अधिकार में छोड़ कर वह आगे बढ़ा। उसे पूरी आशा थी कि वह दारा को 'कैस्पियनद्वार' तक पहुंचते पहुंचते पकड़ लेगा। ११ दिन लगातार चल कर वह रेगी (Rhagæ) नगर तक पहुंचा जहां से 'कैस्पियनद्वार' २५ कोस दक्खिन पड़ता था। यहाँ से वह फिर आगे बढ़ रहा था कि मार्ग में उसे बजिस्तनीज़ (Bagistanes) और अंटिबेलस (Antibêlus) नाम के दो पारसी मिले जिन्होंने उससे कहा कि दारा तो पहिलेही से राज्यच्युत कर दिया गया है और अब उसका प्राण जाया चाहता है।

बैक्ट्रिया (बलख़) के क्षत्रप बेसस (Bessus), सीस्तान (Drangiana) के क्षत्रप बरसयंतीज (Barsaentês), और रक्षकों के प्रधान नायक नबुरज़नीज़ (Nabarzanês) ही अपने अपने सिपाहियों के सहित दारा के साथ रह गए थे। इन तीनों को इस विपत्ति के समय विश्वासघात सूझा। बेसस के चित्त में पारस के भूविख्यात साम्राज्य को हथियाने की इच्छा नाचने लगी। थारा नामक पार्थिया के एक गावँ में इन्होंने दारा को सोने की बेड़ियों से बाँधा और एक ढपे हुए रथ में बैठाकर, जो चारो ओर बैक्ट्रियन सेना से घिरा था, वे पूरब की ओर भागने लगे। बेसस की इच्छा थी कि झटपट बैक्ट्रिया (बलख़) में पहुँचकर सिकन्दर के विरुद्ध प्रबल सेना खड़ी करें। किन्तु सिकन्दर की दारा को जीता पकड़ने की इच्छा इससे भी अधिक प्रबल थी। वह ज्यों त्यों करके

बहुत सी कठिनाइयों के उपरान्त इन लोगों पर आ टूटा। बेसस नहीं चाहता था कि दारा जीता हुआ सिकन्दर के हाथ में पड़ने पावे। इसलिये, उसने दारा से रथ पर से उतर कर अपने साथ भागने को कहा। जब बादशाह ने न माना तो क्रुद्ध होकर तीनों ने अपने अपने भालों से उसे घायल करके वहीं छोड़ दिया और अपना रास्ता लिया। पालिस्ट्रेटस नामी सिकन्दर का एक सिपाही ढूँढ़ते ढूँढ़ते दारा के पास उस समय पहुँच गया था जब वह अपना प्राण छोड़ रहा था। उसने मरते समय केवल सिकन्दर को उस कृपा के लिये धन्यवाद दिया जो उसने उसके कुटुम्ब के साथ दिखाई थी और इस बात पर अपनी प्रसन्नता प्रगट की कि उसका बृहत् पारसी साम्राज्य ऐसे दयावान विजयी के हाथ में गया। सिकन्दर ने बड़ी धूमधाम के साथ दारा के शरीर को पारस के शाही समाधिस्थल में गड़वाया।

इस घटना के पीछे सिकन्दर का कोप बेसस के ऊपर बहुत बढ़ा। ३२९ ई० पू० में वह सीस्तान और अफ़गानिस्तान (Aria, Draugiana, and Archosia) आदि प्रदेशों को जय करता हुआ बैक्ट्रिया (बलख) में जा धमका जहाँ पर बेसस ने अपने को पारस का बादशाह प्रसिद्ध कर रक्खा था। सीस्तान के क्षत्रप बरसयंतीज़ ने, जो दारा के मारने में बेसस का सहयोगी था, पहिले ही से भाग कर भारतवासियों के बीच शरण ली थी। बेसस उत्तर की ओर भागा और आकास नदी (आमू दरिया) को पार करके सारदियाना (आ० तुर्किस्तान) में जा पहुँचा। जाते समय वह नदी की समस्त नावों को नष्ट करता गया जिसमें सिकन्दर उतर न सके। पर यहाँ सिकन्दर ने चमड़े के डेरों में भूसा भरवा कर उन्हें नदी में छोड़वा दिया और इस प्रकार अपनी सेना आनन्द से पार उतार ले गया। बेसस के साथी यह देखते ही घबड़ा गए और वह (बेसस) एक मार्ग में टालमी द्वारा गिरिफ्तार किया गया। सिकन्दर ने बड़ी हलचाकर उसे अपने सामने बुलाया और कोड़े लगवा कर बैक्ट्रिया (बलख) में बन्दी बनाकर भेज दिया। सिकन्दर समरकन्द (Maracanda) होता हुआ उत्तर की ओर जकसरटीज़ (सर दरिया) नदी के किनारे उस स्थान तक पहुँच गया जहां पर प्राचीन पारसी विजयी कैख़ुसरो (Cyrus) ने

केरा (Kyra or Kyrapolis) नगर बसाया था। यहाँ पर सिकन्दर ने अपनी उत्तरी चढ़ाई की हद की भाँति अलेग्ज़ेण्ड्रिया या इस्कन्दरिया (Alexandria and Jaxartem) बसाया। सिकन्दर को इन प्रदेशों में शान्तिस्थापन करने के लिये बहुत प्रबंध करना पड़ा। यहीं उस बैक्ट्रियन सरदार आक्सीरेटीज़ (Oxyratês) की कन्या रोक्साना प्राप्त हुई जिसके साथ उसने अपना विवाह किया। ३२८ ई० पू० में वह ज़रयस्पा (बलख़ के पास) को लौट आया और जाड़े भर वहीं रहा। यहीं पर उसने बेसस को बुलाया और अपने स्वामी के प्रति विश्वासघात के लिये बहुत बुरा भला कहा और उसका नाक कान कटवाकर इकबटना (हमदन) में कृतल करने के लिये भेजवा दिया।

इसके पीछे सिकन्दर ने दक्षिण की ओर भारतवर्ष पर चढ़ाई करने का विचार किया। हिन्दूकुश को पार करता हुआ वह ३२७ ई० पू० में अपनी प्रबल सेना के साथ काबुल के पास आ पहुँचा। पंजाब उस काल में बहुत से राजाओं के बीच बँटा था जिनमें से कई एक झेलम और चेनाब के मध्यवर्त्ती देश के अधीश्वर महाराज पोरस के आधीन थे। सिकन्दर के साथी इतिहासलेखकों ने यह भी लिखा है कि उसके आगे का प्रदेश भी पोरस (Porus) नाम के एक दूसरे राजा के ही आधीन था। इससे स्पष्ट है कि पोरस इन राजाओं का नाम नहीं था वरन् वह विशाल वंश 'पौरव' को सूचित करता था। यह बात पहिले पहल प्रो० लैसन को विदित हुई। इसके सिवाय, प्लूटार्क (Plutarch) ने यह भी लिखा है कि 'सिकन्दर के प्रतिद्वन्द्वी पोरस के पितामह का नाम जिगेसियस (Gegasious) था' जो कि अवश्य चन्द्रवंशियों के आदि पुरुष 'ययाति' से मिल जाता है। महाराज पोरस के आधीन कई एक राजा उत्तर से आए हुए शक लोगों की सन्तान थे, जो सदा महा० पोरस से जो शुद्ध क्षत्रिय वंश के थे, असन्तुष्ट रहा करते थे। इन लोगों ने यह अच्छा अवसर विचारा और वे भेंटें ले लेकर सिकन्दर के यहाँ हाज़िर हुए। तक्षशिला (Taxila) का राजा इनमें मुख्य था। कहते हैं कि वह तक्षक वंश का था जो नागवंशियों का आदि

पुरुष था। ये लोग सर्प की पूजा करते थे। जब सिकन्दर तक्षशिला में गया उसने वहाँ दो बड़े सर्प राजा के यहाँ देखे थे। ५० हाथी लेकर तक्षशिला का राजा सिकन्दर से मिला और उसने आधीनता स्वीकार की। ३२६ ई० पू० में सिकन्दर ने अटक के पास सिन्ध पार किया और वह तक्षशिला में आकर टिका। यहीं पर उसने राजा की भी सेना को अपनी सेना में मिलाया और फिर वह पोरस से युद्ध के लिये पूरी तैय्यारी करने लगा। तक्षशिला ही में सिकन्दर ने मगध के विस्तृत और ऐश्वर्यशाली राज्य की चरचा सुनी। उस समय मगध के सिंहासन पर महाप्रतापी महानन्द आसीन था। नन्दों की सभा से निकाला हुआ राजकुमार चन्द्रगुप्त भी उन दिनों तक्षशिला ही में था। सिकन्दर से उससे वहीं भेंट हुई। महानंद के प्रताप और ऐश्वर्य की कथा राजकुमार ने सिकन्दर से कही इस पर उस देश पर चढ़ाई करने की बात छेड़ी गई। सिकन्दर ने सुझाया कि यदि वे दोनों (चन्द्रगुप्त और सिकन्दर) मिलकर मगध पर चढ़ाई करें तो चन्द्रगुप्त को मगध का सिंहासन प्राप्त हो सकता है। कई दिनों तक चन्द्रगुप्त सिकन्दर के कैम्प में रहा, पर पीछे से उसने सिकन्दर को इतना चिढ़ा दिया कि उसको (चन्द्रगुप्त को) आप ही वहाँ से भागना पड़ा।

टैक्सिला तथा उसके निकटवर्ती देशों का फिलिपस (Phillipus) को क्षत्रप बनाकर सिकन्दर आगे बढ़ा और बे रोक टोक झेलम के किनारे पर आ पहुँचा। यदि ये देशद्रोही राजा सिकन्दर से न मिलजाते तो उसका यहाँ तक बढ़ आना बहुत कठिन था। झेलम के दूसरे किनारे पर महा० पोरस की सेना मार्ग रोकने को पड़ी थी। जिस कौशल के साथ सिकन्दर ने अपनी सेना सहित झेलम (Hydaspes) पार किया और पोरस को हराया वह भारत के इतिहास में प्रसिद्ध ही है।

पुरु-पराजय के पीछे सिकन्दर ने अपनी विजय के उपलक्ष में झेलम के किनारे देवताओं को बलिप्रदान किया और बड़ी धूमधाम के साथ उत्सव मनाया। उसने दो नगर निर्माण करने की आज्ञा दी-एक तो 'निकिया' (Nikæa) जो झेलम के पूर्वी किनारे

निर्मित हुआ और दूसरा ब्यूकिफेलिया जो उसके पच्छिमी
नारे पर उसके प्यारे घोड़े ब्यूकिफेलस की मृत्यु के स्मारक में
पित किया गया। सिकन्दर आगे पूरब की ओर चेनाब (अके-
नीज़–Akesinês) की तरफ़ बढ़ा । ग्लौकी (Glaukœ) का
श जिसमें ३७ नगर और बहुत से ग्राम थे पोरस के राज्य में
ड़ा लिया गया। इसी समय अबिसरीज़ (Abisaês=अभिसार)
ा एक दूसरे पोरस ने जो पहिले पोरस से शत्रुता रखता
आधीनता का सन्देसा भेजा। इसके अनन्तर सिकन्दर ने रावी
Hydraotês–हाइड्राओटीज़) पार किया। यहाँ केठियन (Ka-
eans) आदि कुछ स्वतंत्र भारतवासियों ने 'सङ्गल' नामक
र में एकत्रित होकर उसका सामना किया। नगर के चारो ओर
ड़ों की तिहरी पंक्ति खड़ी करके वे रक्षा में तत्पर हुए। सिक-
र ने नगर के भीतर प्रवेश किया और बहुत से मनुष्यों को कट-
या और बन्दी किया। यहां से चलकर वह सतलज (हाइफेसिस
Hyphasis) के किनारे पहुँचा। सिकन्दर ने सुना कि उस नदी
आगे एक रेगिस्तान पड़ता है जो गंगा नदी तक चला गया है
र उसके आगे गंगदरिदी (Gangdaridæ) लोगों का प्रदेश है
बड़े वीर और साहसी हैं और हाथियों की संख्या और विद्या
लिये प्रसिद्ध हैं। सिकन्दर ने तुरन्त सतलज पार करने की आज्ञा
। किन्तु यहाँ ऐसा अवसर हुआ जब सिकन्दर के आज्ञापालन
विलम्ब हुआ। बहुत लालच और धमकी देने पर भी सिपाहियों ने
गे बढ़ना स्वीकार न किया। अपनी पूरबी चढ़ाई के अन्तिम स्थान
। सूचित करने के लिये उसने सतलज के किनारे १२ अत्यन्त
ची और लम्बी चौड़ी वेदियाँ उठवाईं, देवताओं को बलि दिया
र धूमधाम के साथ उत्सव मनाया। सतलज से पश्चिम का सारा
। उसने पोरस के राज्य में मिला दिया।

लाचार लौटकर सिकन्दर फिर झेलम के किनारे आया और
० पू० ३२६ नवंबर के महीने में पोरस और तक्षिलस की सहायता
। २००० नावों का बेड़ा बनवाकर उसने सिन्ध नदी के मुहाने की
र प्रस्थान किया। पाँचो नदियों के संगमपर उसने अलेग्ज़ेण्ड्रिया
Alexandria) नाम का एक नगर बसाया और सिन्ध के मुहाने

पर पहुँच के 'पटल' (आधुनिक-हैदराबाद-सिन्ध) की नींव दी। यहाँ से फिर उसने कुछ सेना तो जहाज़ी बेड़े के नायक न्यार्कस (Nearchus) के अधिकार में अरब समुद्र की राह से यूफ्रेटिस (इफ़रात) के मुहाने की ओर भेजी और आप खुश्की के रास्ते रवाना हुआ। सिकन्दर ने भारतवर्ष के किसी प्रान्त पर अधिकार नहीं किया, केवल अपने बसाए चारों नगरों में कुछ यूनानी सेना और तक्षिला में एक यूनानी हाकिम वह छोड़ता गया।

ज्यों ही सिकन्दर हिन्दुस्तान छोड़कर पीछे लौट रहा था भारतवासियों ने तक्षशिला के यूनानी हाकिम को मारडाला। सिकन्दर ने एक दूसरा हाकिम नियत करके भेजा जिसने आकर मारकाट मचाई और महाराज पोरस को मरवा डाला। अन्त में उसको भी देश छोड़ कर भागना पड़ा क्योंकि इसी बीच में मौर्य्य चन्द्रगुप्त ने नवनंदों का नाश करके मगध का सिंहासन प्राप्त किया और असंख्य सेना लेकर पंजाब को यूनानियों से खाली कर दिया। भारतवर्ष के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक इसका प्रचंड शासन स्थापित होगया।

इधर जाते जाते सिकन्दर बाबिलन पहुँचा जहाँ जून ३२३ ई० पू० तीसरे पहर के समय ३२ वर्ष ८ महीने की अवस्था में १२ वर्ष ८ महीने राज्य करके वह जगद्विजयी परलोक सिधारा। उसके मरने पर उसके विस्तृत राज्य का बटवारा हुआ जिसके अनुसार बैक्ट्रिया (बलख़)* सिरिया के सिल्यूकस के बाँट में पड़ा। किन्तु यह प्रबन्ध बहुत दिन नहीं चला। सब क्षत्रप लोग सिकन्दर के विस्तृत राज्य को हथियाने की चेष्टा करने लगे। गहिरा अँधाधुंध मचा। सिल्यू

---

* बैक्ट्रिया वा बलख़ संस्कृत में इस देश का नाम 'बाह्लीक' है। मुद्राराक्षस के द्वितीय अंक के ये वाक्य ध्यान देने योग्य हैं, "सुनिये शक, यवन, किरात, काम्बोज, पारस, बाह्लीकादिक देश के चाणक्य के मित्र राजों की सहायता से और चन्द्रगुप्त पर्वतेश्वर के बलरूपी समुद्र से कुसुमपुर (पटना) चारों ओर से घिरा हुआ है।"

कस भी अपने भाग्य की परीक्षा करने को पहुँचा। पर्डिकाज़ (Perdiccas) ने जो वाबिलन में सिकन्दर के बच्चे का निरीक्षक था, राज्य को अपने अधिकार में रखना चाहा। किन्तु वह मारा गया और मिडिया के क्षत्रप पिथो ने अपना अधिकार जमाया। पर और दूसरे क्षत्रपों ने मिलकर उसे भी उतार दिया और यूमेनिस (Eumenes) को ३१६ ई० पू० में सिकन्दर के सिंहासन पर बैठाया। किन्तु यूमेनिस भी अंटिगोनस (Antigonus) नामी सिकन्दर के एक सेनापति के हाथ में पड़ गया। अन्त में अंटिगोनस को भी राज्य बैक्ट्रिया के सिल्यूकस के हवाले कर देना पड़ा। यही अन्त में सिकन्दर का उत्तराधिकारी और विख्यात 'सिल्यूसडी' (Seleucidæ) वंश का संस्थापक हुआ। सिल्यूकस इसके अनन्तर बाबिलन को हस्तगत करके ३१२ ई० पू० में बैक्ट्रिया (बलख) में अपना अधिकार स्थिर करने के लिये आया। यहीं से उसने पंजाब को फिर प्राप्त करने की आशा से भारतवर्ष पर चढ़ाई की और चन्द्रगुप्त से हार खाई।

जस्टिनस (Justinus, XV. 4) सिल्यूकस निकेटर के विषय में लिखता है, "उसने अपने तथा सिकन्दर के दूसरे उत्तराधिकारियों के बीच मेसिडोनियन साम्राज्य के बट जाने के पीछे पूरब में बहुत सी लड़ाइयां कीं। पहिले उसने बाबिलोनिया को छीना फिर बैक्ट्रिया को अधिकृत किया। इसके पीछे वह हिन्दुस्तान में गया, जिसने सिकन्दर की मृत्यु के उपरान्त अपने गरदन पर से दासत्व का जूआ हटाने के विचार से हाकिमों (गवर्नरों) को मार डाला था सेण्ड्रोकोटस ने उसको स्वाधीन किया था, किन्तु जब विजय प्राप्त होगई तब उसने स्वाधीनता के नाम को बन्धन से बदल दिया क्यों-कि वह उन्हीं लोगों को दासत्व से पीड़ित करता था जिन्हें उसने विदेशीय राज्य से बचाया था।'

"इस प्रकार राजमुकुट प्राप्त करके सैण्ड्रोकोटस उस समय हिन्दुस्तान का स्वामी था जब सिल्यूकस अपने आगामी महत्त्व की नींव दे रहा था। सिल्यूकस ने उससे सन्धि की, और पूरब के सब कामों का ठीक करके वह अंटिगोनस (Antigonus) के विरुद्ध लड़ाई में तत्पर हुआ (३०२ ई० पू०)"

अपियनस(Appianus—Syr. C. 55) लिखता है—"उसने (सिल्यूकस ने) सिन्ध पार किया और भारतवासियों के राजा सैण्ड्रोकोटस से लड़ाई ठानी; अन्त में उसने मित्रता कर ली और विवाह का नाता जोड़ा।"

स्ट्रेबो (Strabo—XV. p. 724)—'सिल्यूकस निकेटर ने सैण्ड्रोकोटस को परियानी का बहुत बड़ा भाग दिया।

प्लूटार्क (Plutarch Alex 62)—'क्योंकि थोड़े ही दिन पीछे राजा सैण्ड्रोकोटस ने सिल्यूकस को ५०० हाथी भेट किए और छ लाख आदमियों के साथ सारे भारतवर्ष को चढ़ाई करके परास्त किया।'

सिल्यूकस की इस चढ़ाई के विषय में कोई कोई कहते हैं कि वह गंगा के किनारे पटना (पाटलिपुत्र) के पास तक चला आया था। किन्तु यह बात बिलकुल झूठ है। लैसन, श्लिजिल और श्वानबक आदि विद्वानों ने यह अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि सिल्यूकस केवल सिन्ध नदी के इस पार तक आया था। यहीं पर उसने चन्द्रगुप्त की असंख्य सेना और उसके अखण्ड प्रताप को देख कर हार मानी और सन्धिपत्र लिखा जिसके अनुसार उसे काबुल के दक्षिण का सारा देश चन्द्रगुप्त को देना पड़ा। उसने अपनी कन्या भी चन्द्रगुप्त को ब्याह दी। यह सब हो जाने पर चन्द्रगुप्त ने अपनी सभा में एक यूनानी राजदूत रखना स्वीकार किया। अतएव मेगास्थिनीज नामक एक व्यक्ति जो अर्कोशिया (अफ़गानिस्तान) के क्षत्रप साइबरटिमस के यहाँ सिल्यूकस के प्रतिनिधि की भाँति रहता था, राजदूत बनाकर पाटलिपुत्र (पटना) भेजा गया। कहते हैं कि वह ५ वर्ष चन्द्रगुप्त के साथ रहा जिसके बीच उसने भारतवर्ष का विवरण (Ta Indika) 'टा इंडिका' के नाम से लिखा। अभाग्य वश यह पुस्तक अब नहीं है केवल उसके अंश इधर उधर दूसरे यूनानी तथा रोमन ग्रन्थों में उद्धृत मिलते हैं *।

---

* मेगास्थिनीज़ के पीछे डिमाकस (Deimachos) पटने में बहुत दिन तक रहा। इसको सिल्यूकस ने चन्द्रगुप्त के पुत्र बिन्दुसार

इन्हीं छितराए हुए खंडों को डाक्टर श्वानवक (Dr. Schwanbeck नामक एक पश्चिमी विद्वान ने एकत्रित करके इतिहास के खोजियों का असीम उपकार किया है। इन्हीं महाशय के अलौकिक परिश्रम से आज साठ वर्ष से ये खंड 'मेगास्थिनीज़ इंडिका' के नाम से संसार में प्रसिद्ध है।

रमई पट्टी-मिरज़ापूर
१० जुलाई १९०५। } रामचन्द्रशुक्ल

(Allitrochadês—वायु पु० मद्रसार कहीं 'अमित्रघट') के यहा भेजा था। अपोलोनियस (Apollonius and Tyna) की भी एक यात्रा है जो असीरियन डेमिस (Damis) के साथ ४२ व ४९ ईस्वी के बीच तक्षशिला में आया था, उसने ज्वालामुखी को देखा था।

ग्रीक लोगों में Eratosthenes, Hipparchos, Polemo, Muaseos, Apollodôros, Agatharchidês, Alexander Polyhider, Strabo, Marinos of Tyre और Ptolemy और रोमन लोगों में P. Terentius Varro of Atax, M Vipsanius Agrippa, Pomponius, Mela, Seneca, Pliny, Salinus आदि ने भी इस विषय पर लिखा है।

मेगास्थिनीज़ का

भारतवर्षीय वर्णन ।

खण्ड १

(Diod. II 35-42)

—o—

(३५) भारतवर्ष, जो आकार में चौखूँटा है पूर्व तथा पश्चिम की ओर महासागर से घिरा है, परन्तु उत्तर की ओर यह हिमोदास पर्वत (Mount Hemodas) द्वारा सीदिया के उस भाग से अलग किया गया है जिसमें वे सीदियन निवास करते हैं जो सकाई (Sakai) कहलाते हैं; और चौथा अर्थात् पश्चिमी पार्श्व इंडस (सिन्ध) कहलानेवाली एक नदी से घिरा है जो कदाचित् नाइल को छोड़ संसार की सब नदियों से बड़ी है। सारे देश का विस्तार पूर्व-पश्चिम २८००० स्टेडिया कहा जाता है और उत्तर-दक्षिण ३२००० स्टेडिया। इतना बड़ा विस्तार होने के कारण यह पृथ्वी के लगभग समस्त क्रान्तिवृत्त (Tropic Zone) को छेंके हुए जान पड़ता है और वास्तव में भारत की अन्तिम छोर पर धूपघड़ी की कील बहुधा छाया डालती हुई नहीं देखी जाती, और सप्तऋषि का मंडल रात में अदृश्य रहता है, और अत्यंत दूरास्थित भागों में आर्कटरस (Arcturus) तक दृष्टि से लोप हो जाता है। इसीके अनुकूल यह भी कहा जाता है कि छाया वहां दक्षिण की ओर पड़ती है।

भारतवर्ष में बड़े भारी भारी पहाड़ हैं जो हर प्रकार के फलदार पेड़ों से भरे हैं और जिनमें बहुतेरे विस्तृत उपजाऊ मैदान पड़े हुए हैं

जो सुन्दर तो [एक दूसरे से] घट बढ़ कर हैं पर नदियों के समूह से सब एक रूप से ढके हैं। भूमि का अधिक भाग सिंचाव में है। अतएव उसमें एक वर्ष के भीतर ही दो फ़सल पैदा होती हैं। इसके सिवाय यह सब प्रकार और सब परिमाण के बल और डीलडौल के जन्तुओं–मैदान के चौपायों और आकाश के पक्षियों से भरा है। यहाँ हाथियों की बहुतायत है जोकि बड़े विशाल आकार के होते हैं; यहाँ की भूमि खाने की सामिग्री इतनी अधिक बहुतायत से प्रदान करती है कि वह इन जन्तुओं को उनसे कहीं अधिक बल में बढ़ा देती है जो *लिबया [Libya] में पाए जाते हैं। चूँकि ये भारतवासियों द्वारा संख्या में बहुत से पकड़े जाते हैं और युद्ध के लिये सिखाए जाते हैं इसलिये विजय का पल्ला फेर देने में ये बड़े काम के होते हैं।

(३६) इसी प्रकार निवासी लोग निर्वाह की सब सामिग्री बहुतायत से पाकर प्रायः मामूली डील डौल से अधिक होते हैं और अपनी गर्वीली चेष्टा के लिये प्रसिद्ध होते हैं। वे कला कौशल में भी बड़े निपुण पाए जाते हैं; जैसी कि ऐसे मनुष्यों से आशा की जा सकती है जो स्वच्छ वायु सांस लेते हैं और अत्यन्त उत्तम जल पान करते हैं। भूमि तो अपने ऊपर हर प्रकार के फल जो कृषी द्वारा जाने गए हैं उपजाती ही है, पर उसके गर्भ में भी सब प्रकार के धातुओं की अनगिनत खानें हैं; क्योंकि उसमें सोना और चाँदी बहुत होता है, तांबा और लोहा भी कम नहीं, और जस्ता और दूसरे धातु भी होते हैं जो व्यवहार और आभूषण की वस्तु तथा लड़ाई के हथियार और साज इत्यादि बनाने के निमित्त काम में लाए जाते हैं।

अनाज (Cereals) के अतिरिक्त सारे भारतवर्ष में जो नदी नालों की बहुतायत के कारण भली प्रकार सींचा रहता है, जुआर इत्यादि भी बहुत पैदा होता है; और अनेक प्रकार की दाल, चावल और बास्फोरम (Bosphorum) कहलानेवाला एक पदार्थ तथा और बहुत से खाद्योपयोगी पौधे उत्पन्न होते हैं जिन

---

* लिबया=मध्य अफ्रिका का प्राचीन नाम।

में से बहुतेरे तो एक साथ होते हैं। भूमि पशुओं के निर्वाह योग्य तथा और खाद्य पदार्थ भी प्रदान करती है जिनके विषय में लिखना कठिन है। अतः यह माना जाता है कि भारतवर्ष में अकाल कभी नहीं पड़ा है और खाने की वस्तुओं की साधारणतः महँगी कभी नहीं पड़ी है। चूंकि यहां वर्ष में दो बार वर्षा होती है—एक जाड़े में जब कि गेहूं की बोआई होती है जैसा कि अन्य देशों में, और दूसरी गरमी के टिकाव के (Solstice) समय जो तिल और ज्वार के बोने का उपयुक्त ऋतु है—अतएव भारतवर्ष के निवासी प्रायः सर्वदा वर्ष में दो फ़सल काटते हैं; और यदि इन में से एक फसल कुछ विगड़ भी जाती है तो लोगों को दूसरी का पूरा विश्वास रहता है। इसके अतिरिक्त एक साथ होनेवाले फल और मूल जो दलदलों में ऊगते हैं और भिन्न भिन्न मिठाई के होते हैं मनुष्य को प्रचुर निर्वाह सामग्री प्रदान करते हैं। बात यह हैं कि देश के प्रायः समस्त मैदानों में ऐसी सीड रहती है जो सम भाव से उपजाऊ होती हैं, चाहे वह नदियों द्वारा प्राप्त हुई हो चाहे गरमी की वर्षा के जल द्वारा जो कि प्रत्येक वर्ष एक नियत समय पर आश्चर्य्यजनक क्रम के साथ बरसा करता है, और कड़ी गरमी जो पड़ती है,वह मूलों को पकाती है विशेषत. कसेरू को।

परन्तु, इतने पर भी भारतवासियों में बहुत सी ऐसी रीतियां हैं जो उनके बीच अकाल पडने की सम्भावना को रोकने में सहायता देती हैं; क्योंकि दूसरी जातियों में युद्ध के समय में भूमि को नष्ट करने और इस प्रकार उसको परती ऊसर कर डालने की चाल है; पर इसके विरुद्ध भारतवासियों में, जो कृषकसमाज को पवित्र और अवध्य मानते हैं, भूमि जोतनेवाले यद्यपि उनके पडोस में युद्ध हो रहा है तो भी किसी प्रकार के भय की आशंका से विचलित नहीं होते; क्योंकि दोनों पक्ष के लडनेवाले युद्ध के समय एक दूसरे का संहार करते हैं, परन्तु जो खेती में लगे हुए रहते हैं उन्हें सर्वतोभाव निर्विघ्न पडा रहने देते हैं। इसके सिवाय न तो वे शत्रु के देश का अग्नि से सत्यानाश करते हैं और न उस के पेड़ काटते हैं।

(३७) भारत में बहुत सी बड़ी और जलयात्रा के योग्य

नदियां हैं जो उत्तरी सीमा पर फैले हुए पर्वतों से निकलकर समथल देश पर भ्रमण करती हैं; और इनमें से बहुत सी परस्पर मिल कर उस नदी में गिरती हैं जिसको गंगा कहते हैं। अब, यह नदी जो अपने उद्गम पर ३० स्टेडिया चौड़ी है उत्तर से दक्षिण की ओर बहती है और अपना जल समुद्र में गिराती है तथा गंगरिदाइयों (Gangaridai) की पूर्वीय सीमा स्थिर करती है, जो एक जाति है जिसके पास अत्यन्त दीर्घाकार हाथियों का बड़ा झुंड है। इसी से उनका देश कभी किसी विदेशीय राजा द्वारा नहीं जीता गया, क्योंकि और सब दूसरी जातियां इन पशुओं की प्रचण्ड संख्या और उनके बल से भय खाती हैं। [ऐसे ही सिकन्दर मेसिडोनियन ने समस्त एशिया को विजय करने पर भी गंगरिदाई (Gangaridai) से युद्ध नहीं ठाना जैसा कि दूसरों से उसने किया क्योंकि जब वह अपनी समस्त सेना के साथ गंगा के तट पर आया था और अन्य सब भारतवासियों को उसने हराया था तब उस ने गंगरिदाई की चढ़ाई का सङ्कल्प छोड़ दिया था जब उसने सुना कि उनके पास चार हज़ार भली प्रकार सिखाए और युद्ध के लिये सुशिक्षित हाथी हैं।] दूसरी नदी इंडस (सिन्धु) जो विस्तार में प्रायः गंगा ही के बराबर है अपने प्रतिद्वन्दी की नाईं उत्तर ही से निकलती है और समुद्र में गिर कर अपने मार्ग द्वारा भारतवर्ष की सीमा निर्दिष्ट करती है; चौरस देश के विपुल विस्तार के बीच इसे अपने मार्ग में कई एक सहायक नदियां मिलती हैं जो जलयात्रा योग्य हैं; इनमें से सब से विख्यात हूपानिस (Hupanis) हुडास्पीज़ (Hudaspês) और अकिसिनीज़ (Akisinês) है। इन नदियों के सिवाय और भी हर प्रकार की दूसरी नदियाँ हैं जो देश को तराबोर करती हैं और बगीचों में होनेवाली वनस्पतियों तथा सब प्रकार की फ़सल के पोषण के हेतु जल पहुँचाती हैं। अब, नदियों के, संख्या में, इतने अधिक होने तथा जल की प्राप्ति अत्यंत प्रचुर होने के विषय में देशी तत्त्वज्ञ और पदार्थविज्ञान के पारदर्शीगण ये कारण उपस्थित करते हैं:—वे कहते हैं कि वे देश जो भारतवर्ष को घेरे हैं—स्कीदियन, बैक्ट्रियन तथा आर्य्यों के देश—भारतवर्ष से अधिक ऊंचे हैं, इसलिये उनका जल प्राकृतिक

नियम के अनुसार चारो ओर से यटुर कर नीचे मैदान की ओर बहता है, जहां वह क्रमशः मिट्टी को गीली कर देता है और नदियों के समूह का जन्म देता है।

भारतवर्ष की नदियों में से एक में एक विलक्षणता पाई जाती है; यह सिलास (Sillas) कहलाती है जो इसी नाम के एक झरने से बहती है। इस में और दूसरी नदियों में यह विभिन्नता है कि इस में छोड़ी हुई कोई चीज़ नहीं उतराती किन्तु प्रत्येक वस्तु आश्चर्य के साथ कहना पड़ता है, नीचे डूब जाती है।

(३८) कहा जाता है कि भारतवर्ष जो समस्त भूभाग को लेने से बड़े दीर्घ आकार का है असंख्य तथा भिन्न भिन्न जातियों से बसा है जिन में से एक भी आदि में विदेशीय वंश से न थीं वरन् प्रत्यक्षत. सब आदिम थीं। और फिर न तो भारतवर्ष ने अन्य देश से बस्ती (colony) प्राप्त की और न किसी दूसरी जाति के बीच अपनी बस्ती भेजी। जनश्रुति इतना और बतलाती है कि प्राचीन काल में निवासी जन ऐसे फलों पर निर्वाह करते थे जिन्हें पृथ्वी आप से आप उत्पन्न करती थी और उन पशुओं के चमड़े पहिनते थे जो देश में पाए जाते थे जैसा यूनानी लोग करते थे। और इसी प्रकार (जैसा यूनानियों में) कला कौशल और दूसरे कार्य्य जो मानव जीवन को उन्नत करते है क्रमश आविष्कृत हुए। स्वयं आवश्यकता ने इन्हें ऐसे जीवों को सिखाया जो अत्यंत सीधे और न कि केवल समस्त प्रयत्नों में सहायता देने के लिये• प्रस्तुत हाथों ही से संयुक्त थे वरन् ज्ञान और तीव्र बुद्धि से भी।

भारतवासियों में बडे बड़े पंडित लोग कई कथाएं कहते है जिनका एक संक्षिप्त वृत्तान्त दे देना उचित होगा। वे वर्णन करते है कि अत्यंत प्राचीन काल में जब इस देश के लोग गावों ही में रहते थे, डायोनुसस (Dionusos) बड़ी भारी सेना साथ लेकर पश्चिम ओर के देशों से आकर प्रगट हुआ। उसने समस्त भारतवर्ष को तहसनहस किया क्यों कि उसके अस्त्रों के रोकने योग्य कोई बड़ा नगर न था। पर गरमी के प्रचंड हो जाने से और डायोनुसस (Dionusos) के सिपाहियों के मरीरोगग्रस्त होने के

कारण, सेनानायक, जो अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के हेतु विख्यात था, अपनी सेना को मैदान से हटा कर पर्व्वतों पर ले गया। वहां पर सेना शीतल वायु और जल से जो झरनों से ताज़ा बहकर आता था स्वस्थ होकर रोग से मुक्त हुई। पर्व्वतों के बीच यह जगह जहां डायोनुसस ने अपनी सेना को आरोग्य किया था मीरस (Mêros) कहलाती थी। इसी घटना को लेकर निस्सन्देह यूनानी लोगों ने अपनी सन्तति के बीच यह देवसम्बन्धिक कथा पहुंचाई कि डायोनुसस अपने पिता के जंघे में पाला गया था। इसके उपरान्त उपयोगी पौधों की कृत्रिम उपज की ओर ध्यान जाने पर उसने यह भेद भारतवासियों को भी बतलाया और उन्हें मद्य बनाने की रीति तथा और बहुत सी मनुष्यों की हितसाधक युक्तियां बतलाईं। इसके अतिरिक्त वह बड़े बड़े नगरों का स्थापक था, जिनको उसने गावों को सुगम स्थानों पर हटा कर निर्मित किया; और उसने लोगों को यह भी बताया कि किस प्रकार देवता की पूजा करनी चाहिए तथा धर्म्मशास्त्र और न्यायालय चलाए। इस प्रकार बहुत से बड़े और अच्छे कामों को पूरा करने पर वह देवता माना जाने लगा और उसने अनन्त प्रतिष्ठा लाभ की। यह भी उसके विषय में कहा जाता है कि वह अपनी सेना के साथ स्त्रियों का एक बड़ा दल लेकर चलता था और अपनी सेना को लड़ाई के लिये सुसज्जित करने में ढोल और झांझ का व्यवहार करता था क्योंकि तुरही उसके समय में नहीं बनी थी; और दो सौ पचास वर्ष तक सारे भारतवर्ष पर राज्य करके वह वृद्ध होकर मरा और उसके पुत्र राज्यशासन पर आरूढ़ हो कर अपने वंशधरों के बीच अखंडित परम्परा के लिये राज्यमुकुट छोड़ गए। अन्त में कई पीढ़ियों के आने जाने के उपरान्त राज्यशासन छिन्नभिन्न हो गया और नगरों में पंचायती शासन स्थापित हो गए।

(३६) डायोनुसस और उसके वंशजों के विषय में ऐसी ही *ऐसी जनश्रुतियां उन भारतवासियों के बीच जो पहाड़ी देशों में* निवास करते हैं प्रचलित हैं।

वे यह भी मानते हैं कि हेराक्लीज़ (Herakles) ने भी उन्हीं के बीच जन्म लिया था। वे यूनानियों की भांति उसे दंड और

व्याघ्रचर्मधारी बतलाते हैं। वह और दूसरे मनुष्यों से शारीरिक बल और शक्ति में कहीं अधिक बढ़ा चढ़ा था। और उसने समुद्र और पृथ्वी को दुष्ट जन्तुओं से शून्य कर दिया था। बहुतसी स्त्रियों से विवाह करके उसने बहुत से पुत्र उत्पन्न किए पर कन्या केवल एक ही हुई। पुत्रों के युवा होने पर उसने समस्त भारतवर्ष को समान भागों में अपने लड़कों में बांट जिनको उसने अपने राज्य के भिन्न भिन्न भागों में राजा बनाया। उसने अपनी एक मात्र लड़की के लिये भी वैसाही प्रबंध किया जिसको उसने पाला और एक रानी बनाया। वह कुछ कम नगरों का संस्थापक भी नहीं था। उनमें से सब से विख्यात और बड़े का उसने पालीबोथ्रा (Palibothra) नाम रक्खा। उसमें उसने बहुत से विशद हर्म्य बनवाए और उसकी दीवारों के भीतर एक बहुत बड़ी बस्ती बसाई। नगर को उसने अपूर्व विस्तार की खाँइयों से दृढ़ किया जो नदी से लाए हुए जल से भरी जाती थीं। इससे मनुष्यों के बीच से प्रस्थान करने के उपरान्त हेराक्लीज ने अमर प्रतिष्ठा लाभ की, और उसके वंशजों ने कई पीढ़ियों तक राज्य करने और बहुतेरे महान कार्य्यों को पूरा करने पर भी न तो भारतवर्ष की सीमा के बाहर कोई चढ़ाई की और न विदेश में अपनी बस्ती (Colony) बसाने के लिये भेजी। अन्त में बहुत वर्षों के बीतने पर बहुत से नगरों ने प्रजापालित शासन को ग्रहण किया यद्यपि कई एक ऐसे थे जो इस देश में सिकन्दर की चढ़ाई तक राज्यशासन प्रणाली को बनाए रहे। बहुत सी प्रसिद्ध रीतियों में से जिन्हें उनके प्राचीनतत्त्ववश निर्धारित कर गए हैं एक यह है जिसको वास्तव में प्रशंसनीय मान सकते हैं, क्योंकि (उनका) शास्त्र अनुज्ञा करता है कि उनके बीच कोई किसी अवस्था में दास (गुलाम) न हो, वरन् स्वच्छन्दता का सुख लेते हुए वे उस समान स्वत्व की प्रतिष्ठा को मानते हैं जो उस पर सब को प्राप्त है, क्योंकि (उन लोगों का विचार था) वे लोग जिन्होंने न तो दूसरों पर कुशासन करना और न दूसरों की चापलूसी करना सीखा है, भाग्य के समस्त उलटफेरों के लिये उपयुक्त जीवन को प्राप्त करेंगे क्योंकि ऐसे शास्त्रों का निर्माण करना सर्वथा उत्तम और न्याय सङ्गत है जो समान रूप से लोगों को बद्ध करते हैं पर सम्पत्ति को असमान भागों में बाँटने की आज्ञा देते हैं।

(४०) भारतवर्ष की सारी बस्ती सात जातियों में बँटी है जिन में पहिली दार्शनिकों के समुदाय से बनी है जो संख्या में तो और दूसरे वर्गों की अपेक्षा कम है पर प्रतिष्ठा में उन सब से श्रेष्ठ है। क्योंकि दार्शनिक लोग समस्त राजकीय कर्त्तव्यों से मुक्त होने के कारण न तो दूसरों के स्वामी हैं और न दूसरों के दास हैं। पर गृहस्थ लोगों के द्वारा ये बलिप्रदान करने तथा मृतक के श्राद्धकर्म करने के हेतु नियुक्त किए जाते हैं, क्योंकि ये देवताओं को बहुत प्रिय हैं और परलोक (Hades) सम्बन्धी बातों में बड़े निपुण समझे जाते हैं। इन क्रियाओं के बदले में वे बहुमूल्य दान और स्वत्व पाते हैं। भारतवर्ष के लोगों को वे बहुत सा लाभ भी पहुँचाते हैं, वर्ष के आरम्भ में जब वे इकट्ठे होते हैं तो एकत्रित समूह को अनावृष्टि, शीत, आँधी, रोग तथा श्रोताओं को लाभ पहुँचाने योग्य और और बातों के विषय में भी पहिले ही से सूचना दे देते हैं। इस प्रकार राजा और प्रजा जो होनेवाला रहता है उसको पहिले से जानकर आनेवाली त्रुटि की पूर्त्ति के निमित्त पूरा प्रबंध करते हैं और जो वस्तु आवश्यकता के समय काम आवेगी उसको पहिलेही से प्रस्तुत रखने में कभी नहीं चूकते। वह दार्शनिक जो अपनी भविष्यद्वाणी में भूल करता है निन्दा के अतिरिक्त और कोई दूसरा दंड नहीं पाता, और तब वह अपने शेष जीवन तक के लिये मौन अवलम्बन करता है।

दूसरी जाति में किसान लोग हैं जो दूसरों से संख्या में कहीं अधिक जान पड़ते हैं, पर युद्ध करने तथा और दूसरी राजकीय सेवाओं से मुक्त होने के कारण वे अपना सारा समय खेती में लगाते हैं। शत्रु, निज भूमि पर काम करते हुए किसी किसान के पास आकर उसकी कोई हानि नहीं करता क्योंकि इस वर्ग के लोग सर्वसाधारण के हितकारी माने जाने के कारण सब हानियों से बचाए जाते हैं। भूमि इस प्रकार सुदशा में छोड़ी हुई और घनी फसल उपजाती हुई निवासियों को वे सब वस्तुएं प्रदान करती है जो जीवन को सुखमय बनाने के लिये आवश्यक हैं। किसान लोग स्वयं अपनी स्त्रियों और बच्चों के साथ दिहात में रहते हैं, और नगरों में जाने से बिलकुल बचते हैं। वे राजा को भूमिकर देते हैं क्योंकि

सारा भारतवर्ष राजा की सम्पत्ति है, कोई दूसरा मनुष्य भूमि रखने का अधिकारी नहीं है। भूमिकर के अतिरिक्त वे राज्यकोष में भूमि की उपज का चतुर्थांश देते हैं।

तीसरी जाति के अन्तर्गत अहीर और गड़ेरिये तथा साधारणतः सब प्रकार के चरवाहे हैं जो न नगरों में और न ग्रामों में बसते हैं वरन् डेरों में रहते हैं। शिकार करके और फँसा के वे देश को हानिकारी पक्षियों और बनैले पशुओं से शून्य करते हैं। चूंकि वे इस व्यवसाय में बड़े उत्साह और श्रम के साथ लगे रहते हैं वे भारतवर्ष को उन व्याधियों से मुक्त करते हैं जिन से वह पूरित है अर्थात् सब प्रकार के जंगली जन्तु और पक्षी जो किसानों के बोए हुए बीज को खा जाते हैं।

(४१) तीसरी जाति में शिल्पकार (कारीगर) हैं। इन में से कुछ तो कवच बनानेवाले हैं और दूसरे उन यन्त्रों को बनाते हैं जो किसान और दूसरे लोगों के काम के होते हैं। यह समाज न कि केवल कर ही देने से मुक्त है वरन् राज कोषाध्यक्ष से अर्थसहायता भी पाता है।

पांचवीं जाति सैनिकों की है। यह भली भाँति सुशिक्षित और युद्ध के लिये सुसज्जित रहती है, संख्या में इसका दूसरा स्थान है, और शान्ति के समय यह विषय आमोद में लिप्त रहती है। सारी सेना—योद्धागण युद्ध के हाथी सब—राजा के व्यय से रक्खी जाती है।

छठवीं जाति के अन्तर्गत निरीक्षक लोग हैं। इनका कर्त्तव्य यह है कि जो कुछ भारतवर्ष में होता है उसकी खोज और देखभाल करते हैं और राजा को, अथवा जहाँ राजा नहीं होता न्यायाध्यक्ष को, उस की सूचना देते हैं।

सातवीं जाति मन्त्री और सभासद लोगों की है—अर्थात् वे लोग जो राज काज की देख भाल करते हैं। संख्या की ओर देखने से तो यह समाज सब से छोटा है पर अपने उन्नत चरित्र और बुद्धि के कारण सब से प्रतिष्ठित है क्योंकि इसी वर्ग से राजा के मन्त्रीगण, राज्य के कोषाध्यक्ष और विचारकर्ता जो झगड़ों को निपटाते हैं

लिए जाते हैं। सेना के नायक और प्रधान न्यायाधीशगण भी प्रायः इसी वर्ग के होते हैं।

प्रायः येही भाग हैं जिन में भारतवर्ष का राजनैतिक समाज विभक्त है। किसी व्यक्ति को अपनी जाति से विवाह करने अथवा अपने निज के व्यवसाय वा कार्य्य को छोड़ कोई दूसरा व्यवसाय वा कार्य्य करने की आज्ञा नहीं है। उदाहरण के लिये, कोई सिपाही किसान नहीं हो सकता अथवा कोई शिल्पकार दार्शनिक नहीं होसकता।

भारतवर्ष में बड़े बड़े हाथी संख्या में बहुत हैं जो डीलडौल और बल दोनों में उनसे कहीं बढ़ के होते हैं जो दूसरी जगह पाए जाते हैं। जैसा कि कुछ लोग कहते हैं यह जानवर मादा को एक विचित्र रीत से नहीं ढाकता, वरन् घोड़ों तथा और दूसरे चौपायों ही के समान। गर्भाधान का काल कम से कम सोलह मास है और अधिक से अधिक अठारह। घोड़ियों की तरह ये प्रायः एक समय में एक ही बच्चा देती हैं और उसको हथिनी छ वर्ष तक दूध पिलाती है। बहुतेरे हाथी इतना जीते हैं जितना एक अत्यंत वृद्ध मनुष्य, परन्तु सब से बूढ़े दो सौ वर्ष तक जीते हैं।

भारतवासियों में विदेशियों तक के लिये कर्म्मचारी नियुक्त होते हैं जिनका काम यह देखने का रहता है कि किसी विदेशी को हानि न पहुँचने पावे। यदि उन (विदेशियों) में से कोई रोगग्रस्त हो जाता है तो वे उसकी चिकित्सा के निमित्त वैद्य भेजते हैं तथा और दूसरे प्रकार से भी उसकी रक्षा करते हैं, और यदि वह मर जाता है तो उसे गाड़ देते हैं और जो सम्पत्ति वह छोड़ता है उसे उसके सम्बन्धियों के हवाले कर देते हैं। न्यायाधीश लोग भी उन मामिलों का जो विदेशियों से सम्बन्ध रखते हैं बड़े ध्यान पूर्वक फ़ैसला करते हैं और उन पर बड़ी कड़ाई करते हैं जो उन के साथ बुरा व्यवहार करते हैं। [जो कुछ हमने अभी भारतवर्ष और उसके पुरावृत्त के सम्बन्ध में कहा है हमारे वर्तमान अभिप्राय के लिये बस होगा]।

पुस्तक १

खण्ड २

Arr. Exped. Alex. v 6—2—11.

भारतवर्ष की सीमा, उसके साधारण लक्षण और उसकी नदियों के विषय में।

—:o—

इरेटोस्थिनीज़, तथा मेगास्थिनीज़ के अनुसार भी जो अरकोशिया (Arachosia) के क्षत्रप साइबरटिअस (Siburtios) के साथ रहा था और जिसने, जैसा कि वह स्वयं कहता है कई बेर भारतवासियों के राजा सेन्ड्रोकोट्स (Sandrakottos) को देखा था, हिन्दुस्थान उन चार भागों में सब से बड़ा है जिन में दक्षिणी एशिया विभक्त है, और सब से छोटा वह भाग है जो इफ़रात और स्वयं हमारे समुद्र के बीच स्थित है। शेष दो भाग जो दूसरों से इफ़रात और सिन्धु द्वारा जुदे किए गए हैं और इन दोनों नदियों के बीच में स्थित हैं मुशकिल से इतने विस्तार के हैं कि यदि वे दोनों एक साथ लिए जायँ तब भी उनकी हिन्दुस्थान के साथ बराबरी की जाय। ये ही ग्रंथकार कहते हैं कि भारतवर्ष अपने पूर्वीय पार्श्व में ठीक सीधे दक्षिण तक महासमुद्र से घिरा है, और उसकी उत्तरी सीमा काकसोस (Kaukasos) पर्वतश्रेणी उस स्थान तक है जहाँ टारस (Tauros) से उस श्रेणी का सङ्गम है, और उत्तर तथा उत्तर पश्चिम की ओर की समस्त सीमा, महासागर तक सिन्धु नदी द्वारा बनी है। भारतवर्ष का अधिक भाग चौरस मैदान है और ये (मैदान), जैसा कि लोग अनुमान करते हैं, नदियों द्वारा लाए हुए रेत और मिट्टी से बने हैं—यह सिद्धान्त वे इस बात से निकालते हैं कि दूसरे देशों के मैदान जो समुद्र से दूर रहते हैं प्रायः अपनी जुदी जुदी नदियों ही से बने रहते हैं, इसी से प्राचीन काल

में कोई कोई देश अपनी नदी के नाम से भी पुकारे जाते थे। उदाहरण के लिये हरमोज (Hermos) कहलानेवाला मैदान—एसुज़ एशिया (माइनर) में एक नदी है जो माता—डिंडमीन (Mother Dindymênê) से बह कर स्मरना नामी योलियन (Æolian) नगर के निकट समुद्र में गिरती है; कौस्ट्रोस (Kaistros) का लीडियाई मैदान भी जो कि उसी लीडिआई नदी के नाम पर है; और दूसरा मिसिया (Mysia) में कैकस (Kaikos) का मैदान; तथा केरिया (Karia) में भी एक—अर्थात् मैन्ड्रोस (Manidros) का जो मिलटोज़ (Miletos) तक विस्तृत है जो एक आयोनियन (Ionian) नगर है, और मिश्र के विषय में हेरेडोटस और हिकेटियस (Hekatios) (अथवा मिश्र सम्बन्धी ग्रंथ का लिखनेवाला यदि वह हिकेटियस के सिवाय कोई और था) दोनों इतिहासलेखक इस (मिश्र) को नील नद ही का प्रसाद बतलाने में सहमत हैं, इसलिये यह देश कदाचित् उस नदी के नाम से भी पुकारा जाता था; क्योंकि प्राचीन काल में आइजिप्टस (Aigyptos) उस नदी का नाम था जिसको आज दिन मिश्रवाले और दूसरी जातियाँ नील कहते हैं, यह होमर के शब्द स्पष्ट रूप से सिद्ध करते हैं जब वह कहता है कि मिनिलौस (Menelaos) ने अपनी नौकाओं को आइजिप्टस नदी के मुहाने पर ठहराया। तब यदि प्रत्येक मैदान में एकही नदी है और ये नदियां, यद्यपि किसी तरह बड़ी नहीं हैं, ऊँचे स्थानों से जहां उनके उत्पत्तिस्थान हैं कीचड़ ले आ कर बहुत सी नई भूमि बनाने में समर्थ हैं, फिर भारतवर्ष के विषय में इस विश्वास को तिरस्कृत करना युक्ति विरुद्ध होगा कि उसका अधिकांश चौरस मैदान है, और यह मैदान नदियों द्वारा लाए हुए कीचड़ से बना है, यह देख कर के कि हरमोज़, कौस्ट्रोस और कैकस तथा मैन्ड्रोस और एशिया की बहुत सी दूसरी नदियाँ जो भूमध्यसागर में गिरती हैं यदि सब मिलजायें तब भी जलविस्तार में उनकी तुलना एक साधारण भारतीय नदी से नहीं की जा सकती, और उन सब से बड़ी गंगा की क्या बात है जिसके साथ न तो मिश्री नील की और न डेनूब की जो यूरोप में हो कर बहती है एक क्षण के लिये तुलना की जा सकती है। वरन् ये सब की सब यदि एक में मिल जायं तो भी सिन्ध के बराबर न

[illegible]
बड़ी नदी है और जो एशिया की नदियों में बड़ी पन्द्रह सहायक नदियों को प्राप्त करके और अपने समवर्ती से देश को नाम देने का गौरव छीन के, अन्त में समुद्र में जा गिरती है।

खण्ड ३

Arr Indica II 1. 7

भारतवर्ष की सीमा के विषय में

(देखो एरियन का अनुवाद)

—— o ——

खंड ४

Strabo. xv. 1, II—p 689

भारत की सीमा और उसके विस्तार के विषय में

—— o ——

भारतवर्ष उत्तर की ओर टारस और परियाना से ले कर पूर्वीय समुद्र तक उन पहाड़ों से घिरा है जो इन देशों के निवासियों द्वारा तो (Parapamisos) पैरोपैमिसस, हिमोदाज और हिमौस (Himaos) तथा और दूसरे भिन्न भिन्न नामों से पुकारे जाते हैं परन्तु मेसिडोनियनों द्वारा कौकसास (Kaukasos अर्थात् हिमालय) के नाम से। पश्चिम की ओर की सीमा सिन्ध नदी है किन्तु दक्षिणी और पूर्वीय पार्श्व जो दोनों ओर से बहुत बड़े हैं अटलांटिक सागर तक चले गए है*। इस प्रकार देश का आकार विषम कोण चतुर्भुज

---

* प्राचीन काल में पृथ्वी को अटलांटिक सागर द्वारा घिरा हुआ एक द्वीप समझते थे।

है, क्योंकि प्रत्येक बड़ी भुजाएं अपने सामने की भुजाओं से ३००० स्टेडिया अधिक हैं जो दक्षिणी और पूर्वीय किनारों के सामने में एक अन्तरीप है जो इन दोनों दिशाओं में सामान्यरूप से निकला है। [पश्चिमी पार्श्व की लम्बाई काकेशियन पर्वत से दाक्षिण सागर तक अर्थात् सिन्ध के किनारे हो कर उसके मुहाने तक १३००० स्टेडिया कही जाती है, इसलिये उसके सामने का पूर्वीय पार्श्व, अन्तरीप की लम्बाई ३००० स्टेडिया जोड़ने से, लग भग १६००० स्टेडिया के होगा। यह हिन्दुस्थान की लम्बाई उस जगह है जहा वह अधिक से अधिक और कम से कम दोनों हैं।] पश्चिम से पूर्व की लम्बाई पालिबोथ्रा तक अधिक निश्चय के साथ बतलाई जा सकती है क्योंकि राजमार्ग जो उस नगर को गया है (Schœni) स्कोनी से नापा गया है और लम्बाई में १०००० स्टेडिया है *। बाहर के भागों के विस्तार का अनुमान केवल उस समय से किया जा सकता है जो गंगा में हो कर समुद्र से पालीबोथ्रा तक जलयात्रा करने में लगता है; और यह लग भग ६००० स्टेडिया के होगा। कुल लम्बाई, कम से कम गिनती करने पर, १६००० स्टेडिया होगी। यह इरटास्थिनीज़ (Eratasthenês) की अटकल है जो कहता है कि मैंने यह राजमार्ग की चट्टियों पर के प्रामाणिक खातों (रजिस्टरों) से प्राप्त किया है। यहां पर मेगास्थिनीज़ इस से सहमत है [परन्तु पेट्रोक्लीज़ (Patroklês) लम्बाई को १००० स्टेडिया और कम बतलाता है]-Arr Ind. III. I 5

खण्ड ५

Strabo, II i. 7-p 69

भारतवर्ष के विस्तार के विषय में

फिर हिपार्कस (Hipparchos) ने अपनी व्याख्या की दूसरी जिल्द में, स्वयं इरटास्थिनीज़ को पेट्रोक्लीज़ पर, भारतवर्ष की

उत्तर की ओर की लम्बाई के विषय में मेगास्थिनीज से विरुद्ध होने का कलङ्क लगाने का दोषी ठहराया है कि मेगास्थिनीज़ उसको १६००० स्टेडिया बतलाता है और पेट्रोक्लीज़ उससे १००० स्टेडिया कम ।

खण्ड ६

Strabo, xv 1 12-pp 689 690

भारतवर्ष के विस्तार के विषय में

[इससे कोई मनुष्य तुरन्त देख सकता है कि किस प्रकार दूसरे ग्रन्थकारों के विवरण एक दूसरे से विभिन्न हैं। जैसे टीशियास (Ktesias) कहता है कि भारतवर्ष विस्तार में एशिया के शेष भाग से कम नहीं है, आनीसिक्रिटस उसको जीवसम्पन्न भूमि का तृतीयांश विचारता है और नियार्कस (Nearchos) कहता है कि केवल मैदान को तै करने में चार महीने लगते हैं ।] मेगास्थिनीज़ और डिमाकास (Dêimachos) की अटकल इससे और घट कर है क्योंकि उनके अनुसार दक्षिण सागर से काकसोस तक का अन्तर ५०००० स्टेडिया से ऊपर है । [पर डिमाकास मानता है कि कहीं कहीं दूरी ३०००० स्टेडिया से अधिक है। इसकी आलोचना ग्रन्थ के पूर्वभाग में हो चुकी है।]

खण्ड ७

Strabo, II 1 4,-pp 68-69

भारतवर्ष के विस्तार के विषय में

हिपार्कस उन प्रमाणों की निस्सारता दिखला कर जिन पर यह स्थित है, इस मत का विरोध करता है। वह कहता है कि पेट्रोक्लीज़

विश्वास के योग्य नहीं, क्योंकि वह डिमाकास और मेगास्थिनीज़ दो प्रवीण ग्रन्थकारों के विरुद्ध है जो कहते हैं कि किसी किसी स्थान पर दक्षिण सागर से दूरी २०००० स्टेडिया है किसी किसी पर ३०००० स्टेडिया। वह कहता है कि ऐसा ही विवरण वे लोग देते हैं और वह उस देश के प्राचीन मानचित्र के भी अनुकूल है।

खण्ड ८

Arr. Indica. III. 7-8

भारतवर्ष के विस्तार के विषय में

—o:—

मेगास्थिनीज़ के अनुसार पूर्व से पश्चिम तक का विस्तार ही हिन्दुस्तान की चौड़ाई है, यद्यपि दूसरों ने उसको लम्बाई कहा है। उसका कथन है कि चौड़ाई कम से कम १६००० स्टेडिया है और उसकी लम्बाई जिससे उसका अभिप्राय उत्तर से दक्षिण तक के विस्तार से है अत्यन्त संकीर्ण स्थान में २२३००० स्टेडिया है।

खण्ड ९

Strabo II. 19,-P. 76.

सप्तऋषि के अस्त होने तथा छाया के भिन्न भिन्न दिशाओं के पड़ने में विषय में।

Conf. Epit.

फिर, वह (इरटास्थिनीज़) डिमाकास की अज्ञानता तथा ऐसे विषयों के आनुभविक ज्ञान की हीनता दिखलाना चाहता था जो,

कि उसके इस विचारने से प्रत्यक्ष है कि भारतवर्ष शरत्कालीन विषुव (Autumnal Equinox) और शरद क्रान्ति सीमा (Winter Tropic) के बीच स्थित है तथा उसके मेगास्थिनीज़ के इस कथन का खंडन करने से कि हिन्दुस्तान के दक्षिणी भागों में सप्तऋषि का मण्डल दृष्टि से लोप होजाता है और छाया भिन्न दिशाओं में पड़ती है—क्योंकि यह विश्वास दिलाता है कि यह रहस्य भारतवर्ष में कभी नहीं दिखाई देता, और इस प्रकार अपनी घोर अज्ञानता प्रगट करता है। यह (इरटास्थनीज़) इस मत से सहमत नहीं है किन्तु डिमाकास को यह कहने के कारण, कि भारतवर्ष में सप्तऋषि कहीं अदृश्य नहीं रहते और न छाया ही भिन्न दिशाओं में पड़ती है जैसा कि मेगास्थिनीज़ ने अनुमान किया था अज्ञानता का दोष देता है।

खण्ड १०

Pliny, Hist. Nat. vi 22–6

सप्तऋषि के अस्त होने के विषय में।

आगे (प्रसिआई के) मध्य भाग में मोनेडीस और सुआरी (Suari) हैं जिनके आधीन मल्यौस (Malous) पर्वत है जिस पर छ ६ महीने तक जाड़े में छाया उत्तरायण पड़ती है और गरमी में दक्षिण की ओर। बेटन (Baeton) कहता है कि सप्तऋषि देश के उस भाग में वर्ष भर में केवल एक ही बार दिखाई पड़ते हैं सो भी पन्द्रह दिन से अधिक नहीं। मेगास्थिनीज़ कहता है कि ऐसा हिन्दुस्तान के कई भागों में होता है।

मिलाओ।

Solin, 52–13.

पालीबोथ्रा के आगे मल्यौस पर्वत है जिस पर छ छ महीने तक

जाड़े में छाया उत्तरायण पड़ती है और गरमी में दक्षिण की ओर। देश के उस भाग में वर्ष में एक बार उत्तरी ध्रुव दिखाई पड़ता है और पन्द्रह दिन से अधिक नहीं जैसा कि येटन (Baeton) सूचित करता है जो यह मानता है कि भारतवर्ष के कई भागों में ऐसा होता है।

खण्ड ११

Strabo, xv. 1.20—p. 693.

भारतवर्ष की उर्वरता के विषय में।

मेगास्थिनीज़ भारतवर्ष की उर्वरता इस बात से सूचित कराता है कि भूमि प्रतिवर्ष अन्न और फल दोनों की दो फ़सल उपजाती है। [इरटास्थिनीज़ भी यही बात लिखता है, क्योंकि वह एक जाड़े की और एक गरमी की बोआई का ज़िक्र करता है जिन दिनों में पानी बरसता है; क्योंकि वह कहता है कि कोई वर्ष इन दोनों ऋतुओं में वर्षा से खाली नहीं जाता, जिससे अत्यंत बहुतायत रहती है क्योंकि भूमि सदैव उपजाऊ रहती है। पेड़ों से बहुत फल उत्पन्न होता है; और पौधों की जड़ें, विशेषकर कसेरू की, स्वभावतः तथा उबालने से भी मीठी होती हैं क्योंकि सरदी जिससे उनका पोषण होता है सूर्य्य की किरणों से उष्ण हो जाती है—चाहे वह (सरदी) बादलों से गिरी हो चाहे नदियों से आई हो। इरटास्थिनीज़ यहां एक विचित्र वाक्य का व्यवहार करता है, क्योंकि जो औरों के द्वारा फलों तथा पेड़ों के रस का पकना कहा जाता है भारतवासियों में वह उबलना कहा जाता है जो कि उत्तम स्वाद उत्पन्न करने के लिये वैसा ही गुणकारी होता है जैसे आग पर उबालना। पानी ही की गरमी को यही ग्रन्थकार पेड़ों की डालियों के अद्भुत लचीलेपन का हेतु बतलाता है जिन से पहिये बनते हैं, तथा ऐसे ऐसे पेड़ों के होने का भी जिन पर ऊन उत्पन्न होता है]—मिलाओ, Herodotus II, 86.

मिलाओ।

Eratosthenes Ap Strabo xv. 1. 13—p. 690 —

ऐसी ऐसी विस्तृत नदियों से उत्पन्न भाप से तथा वार्षिक वायु द्वारा, जैसा कि इरटास्थिनीज़ कहता है, भारतवर्ष गरमी में वृष्टि से सींचा रहता है और मैदान में बाढ़ आजाती है। अत इन्हीं वर्षा के दिनों में सन और बाजरा तथा तिल, चावल और बासफोरम भी बोए जाते हैं; और जाड़े के दिनों में गेहूँ, जौ, दाल तथा और दूसरे खाने योग्य फल, जिन्हें हम लोग नहीं जानते।

खण्ड १२

Strabo, xv.—1.37—p. 703

भारतवर्ष के कुछ जंगली पशुओं के विषय में।

मेगास्थिनीज के अनुसार सब से बड़े बाघ प्रेसिआई (Prasii) के बीच पाए जाते हैं जो प्राय सिंह से दूनी डीलडौल के होते हैं और इतने बलिष्ट होते हैं कि एक पालतू बाघ ने जिसको चार आदमी लिए जाते थे एक खच्चर की पिछली टांग पकड़ कर उसको असक्त कर दिया और अपनी ओर खींच लिया। बन्दर बड़े से बड़े अर्थात् कुत्ते से भी बड़े होते हैं; केवल मुँह को छोड़ जो काला होता है वे श्वेत रंग के होते हैं, यद्यपि और स्थानों में इसके विरुद्ध देखा जाता है। उनकी पूँछ लंबाई में दो क्यूबिट् से अधिक होती है। वे बहुत घरेलू होते हैं और दुष्ट प्रकृति के नहीं होते; इससे न तो वे आदमियों पर चोट करते हैं और न चोरी करते हैं। पत्थर खोदे जाते हैं जो गधकी रंग के होते हैं और अंजीर तथा मधु [शहद] से भी मीठे होते हैं। देश के कुछ भागों में दो क्यूबिट् लम्बे सांप होते हैं जिनके चमगीदड़ों की तरह झिल्लीदार फैलनेवाले पर होते हैं। वे रात को उड़ते फिरते हैं। उस समय वे पसीने या मूत्र के बिन्दु गिराते हैं जो उन मनुष्यों की त्वचा को जो सावधान नहीं रहते, घिनौने घावों से उभेर देते हैं। यहां परवाले बिच्छू भी बड़े असाधारण आकार के होते हैं। आबनूस यहां उत्पन्न होता है। कुत्ते भी

बड़े बलवान और साहसी होते हैं, जो अपनी पकड़ी हुई चीज़ जब तक नाक में पानी न डाला जाय नहीं छोड़ते । वे इतनी तेज़ी से काटते हैं कि किसी किसी की आंखें निकल पड़ती हैं और किसी की गिर पड़ती हैं। सिंह और सांड़ दोनों एक कुत्ते द्वारा पकड़े गए थे। सांड़ अगाड़ी की ओर से पकड़ा गया था और कुत्ते से छुड़ाए जाने के पहिले ही मर गया।

खण्ड १३ (ख)।

Ælian, Hist, Anim xvi.-10.

हिन्दुस्तानी लंगूरों के विषय में।

भारतवर्ष में प्रेसिआई* (Prasii) के बीच लोग कहते हैं कि एक जाति के लंगूर मनुष्य सरीखी बुद्धिवाले होते हैं जो देखने में प्रायः हरकेनियन [Harkanian] कुत्तों के डील के होते हैं, प्रकृति ने उनका माथा बाल के गुच्छों से विभूषित किया है जिसको यथार्थतः अनभिज्ञ मनुष्य कृत्रिम समझेगा। उनकी ठुड्डी सेटायर [*Satyr*] के *समान* ऊपर को उठी होती है और उनकी पूँछ सिंह की बलिष्ट पूँछ के समान होती है। मुँह और पूँछ के छोर को छोड़ जिसका रंग ललाई लिए होता है, उनका शरीर सर्वत्र श्वेत होता है। वे बहुत बुद्धिमान होते हैं और स्वभावतः पालतू होते हैं। वे जंगलों में पाये जाते हैं। वहां वे उन फलों पर भी जिन्हें वे पहाड़ियों पर स्वाभाविक उगे हुए पाते हैं निर्वाह करके रहते हैं। वे लाटेज [Latago] नामक भारतीय नगर के आस पास संख्या में बहुत से जाते हैं। वहां पर वे चावल खाते हैं जो कि उनके लिये राजा की आज्ञा से रक्खा जाता है। वास्तव में ताज़ा पका हुआ भोजन नित्य उनके व्यवहार के हेतु

---

* प्रेसिआई—अर्थात् प्राच्य।

रक्खा जाता है। कहा जाता है कि जब वे अपनी क्षुधा शान्त कर चुकते हैं तब बड़े क़रीने के साथ बिना किसी वस्तु को जो उनके रास्ते में पड़ती हो हानि पहुँचाए वे जंगल में अपने अपने निवास स्थानों को लौट जाते हैं।

खण्ड १३

Ælian, Hist, Anim. xvii 39. [मिलाओ खण्ड १२-३]

हिन्दुस्तानी लंगूरों के विषय में।

प्रेक्सिआई [Prazii] के देश में जो भारतीय जन हैं, मेगास्थिनीज़ कहता है कि बन्दर होते हैं जो बड़े से बड़े कुत्तों से डील में कम नहीं होते। उनके ५ क्यूबिट् लम्बी पूंछ होती है, उनके मस्तक पर बाल होते हैं और उनको घनी डाढ़ी होती है जो छाती तक लटकती है। उनका चेहरा बिलकुल सफ़ेद होता है और बाक़ी शरीर काला होता है। वे पालतू होते हैं और मनुष्य से हिले-मिले रहते हैं और दूसरे देशों के लंगूरों की तरह प्रकृति के दुष्ट नहीं होते।

खण्ड १४

Ælian, Hist, Anim, vi 41. [मिलाओ खण्ड १२-४]

परवाले बिच्छू और सर्पों के विषय में।

मेगास्थिनीज कहता है कि भारतवर्ष में बड़े दीर्घ आकार के परदार बिच्छू होते हैं जो कि यूरोपियनों तथा देशियों को समान रूप से डंक मारते हैं। सांप भी हैं जो इसी प्रकार परवाले होते हैं।

ये दिन में नहीं वरन् रात को बाहर निकलते हैं जब कि वे मूत्र गिराते हैं जो यदि किसी मनुष्य की त्वचा पर गिरता है तो तुरन्त उस पर घिनौने घाव पैदा कर देता है। मेगास्थिनीज़ का ऐसा कथन है।

खण्ड १५

Strabo, xv. 1. 56.—pp. 710—711.

हिन्दुस्तान के पशुओं तथा कन्दमूल के प्रसङ्ग में वह (मेगास्थिनीज़) कहता है कि यहां चट्टान लुड़कानेवाले बन्दर होते हैं जो ढालुओं पर चढ़ जाते हैं जहां से वे अपने पीछा करनेवालों पर पत्थर लुड़काते हैं। वह कहता है कि बहुतेरे पशु जो हम लोगों के यहां पालतू होते हैं हिन्दुस्तान में जंगली पाए जाते हैं। तथा वह ऐसे घोड़ों की चरचा करता है जिनके एक सींग होती है और जिनका सिर हरिनों के समान होता है; तथा जिनमें कोई कोई सीधे ऊपर ३० *आर्गी [Orguiæ] की ऊंचाई तक और कोई तिरछे ज़मीन पर ५० आर्गी की लम्बाई तक बढ़ जाते हैं। इनके घेरे की मोटाई तीन से छ क्यूबिट् तक होती है।

—:o:—

खण्ड १५ (ख)

Ælian, Hist, Anim. XVI. 20-21 [मिलाओ खण्ड १।-२-१]

भारतवर्ष के कुछ पशुओं के विषय में।

(२०) हिन्दुस्तान के कुछ ज़िलों में [मैं उनके विषय में कहता

हैं जो बहुत अन्तर्भाग में हैं] लोग कहते हैं कि दुर्गम पहाड़ हैं जो
बनैले पशुओं से भरे हैं और जो हमारे देश के ऐसे पशुओं के भी
निवासस्थान हैं। अन्तर केवल इतनाहीं है कि वे वहां जंगली मिलते
हैं, क्योंकि लोग कहते हैं कि भेड़ तक वहां जंगली फिरा करती हैं,
तथा कुत्ते, बकरियां और बैल भी जो इधर उधर मनमाने घूमा
करते हैं क्योंकि वे चरवाहों के आधिपत्य से स्वतंत्र और मुक्त रहते
हैं। उनकी संख्या गिनती से बाहर है यह न कि केवल भारतवर्ष
विषयक ग्रन्थकारों ही द्वारा कहा गया है वरन् उस देश के विद्वानों
द्वारा भी जिनके बीच गिनती किये जाने के योग्य ब्राह्मण लोग
ठहरते हैं और जिनकी साक्षी भी इसी अभिप्राय की है। यह भी
कहा जाता है कि भारतवर्ष में एक जानवर एक सींग का होता है
जो देशियों द्वारा [Kartazon] कर्तज़ोन कहलाता है। यह पूरे घोड़े
की डील का होता है और इसके एक कलगी होती है तथा ऊन
की भांति कोमल पीले बाल होते हैं। यह बहुत उत्तम टांगों से
सुशोभित रहता है और बड़ा फुरतीला होता है। इसकी टांगें बेजोड़
होती हैं और हाथी की टांगों की सी बनी होती हैं और इसके सूअर
के ऐसी पूछ होती है। इसकी भौंहों के बीच से एक सींघ निकलती
है, यह सीधी नहीं होती वरन् अत्यन्त स्वाभाविक पेचों के साथ
घूमी रहती है और काले रंग की होती है। यह सींघ बहुत ही तेज़
कही जाती है। इस जानवर का स्वर, जैसा मैं ने सुना है अत्यन्त
ही भीषण और कर्कश होता है। यह दूसरे जानवरों को अपने
पास आने देता है और उनके प्रति सीधा होता है, यद्यपि लोग
कहते हैं कि अपने सवर्गों के साथ यह कुछ झगड़ालू होता है।
नरों के विषय में प्रसिद्ध है कि उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति न कि
केवल आपस ही में सींगों के धक्के से लड़ने की है वरन् मादा
के साथ भी वे वैसे ही उदण्डता दिखलाते हैं; और अपने झगड़ों में
वे इतने हठी होते हैं कि जब तक उनका परास्त विपक्षी मारा नहीं
जाता तब तक वे उसे नहीं छोड़ते। परन्तु, फिर, न कि केवल इस
जन्तु का प्रत्येक अंग ही बड़े बल से संयुक्त रहता है वरन् इसके
सींग की प्रौढ़ता ऐसी होती है कि कोई वस्तु उसके सामने नहीं
ठहर सकती। यह एकान्त चरागाहों में चरना पसन्द करता है
और अकेला फिरा करता है, परन्तु ऋतुकाल में यह मादा का संग

ढूंढ़ता है और उसके प्रति तब सुशील हो जाता है-यहां तक कि दोनों साथ साथ चरते हैं । जब ऋतु बीत जाती है और मादा गर्भवती हो जाती है तब हिन्दुस्तानी कर्त्तज़ौन फिर उदंड हो जाता है और एकान्त ढूंढ़ता है । इसके बच्चे जब बिलकुल छोटे रहते हैं तभी प्रेसिआई के राजा के पास लाए जाते हैं और बड़े बड़े तमाशों में लड़ाए जाते हैं। किसी युवा [कर्त्तज़ौन] का कभी पकड़ा जाना स्मरण में नहीं आता।

(२१) पथिक को जो उन पर्वतों को पार करता है जो भारतवर्ष की उस सीमा को घेरे हैं जो अत्यन्त अन्तर्भूत है लोग कहते हैं ऐसे ऐसे नाले उस जिले में मिलते हैं जिसे देशी लोग कोरौंडा [Korouda] कहते हैं, जो बड़े घने जंगलों से ढँके रहते हैं। ये Satyr के समान गढ़त के एक विलक्षण जन्तु के निवासस्थल हैं जो चारो ओर झबरीले बालों से ढँका रहता है और जिसकी पूंछ घोड़े की सी पुट्ठे से निकली हुई होती है। यदि ये जन्तु पड़े रहने पाते हैं तो झापसों के भीतर वनफल खा कर रहते हैं; किन्तु जब वे कहीं अहेरी की तुरही और शिकारी कुत्तों का भूंकना सुन पाते हैं तब वे ऊँचे ढालुओं पर आश्चर्यजनक गति के साथ झपट जाते हैं, क्योंकि वे पहाड़ों पर चढ़ने के अभ्यस्त होते हैं। वे अपनी रक्षा अपने पीछा करनेवालों पर पत्थर लुढ़का कर करते हैं जो कि कभी

सर्प इतने भारी होते हैं कि वे पूरा बारहसिंहा तथा (उसी के) समान डील डौलवाले दूसरे जन्तुओं को निगल जाते हैं।

—oo—

खण्ड १७

Ælian Hist. anim, VIII, 7,

विद्युत ईल के विषय में।

मेगास्थिनीज से मुझे ज्ञात हुआ है कि भारतसमुद्र में एक छोटी जाति की मछली होती है जो जब तक जीवित रहती है कभी नहीं देखी जाती, क्योंकि वह सदैव गहरे पानी में तैरती है। और सतह पर तभी उतराती है जब मर जाती है। यदि कोई इसको छू लेता है तो वह बेहोश और मूर्छित हो जाता है—यहां तक कि अन्त में मर ही जाता है।

खण्ड १८

Pliny, Hist, Hat VI 24 1.

* तप्रोबेन के विषय में।

मेगास्थिनीज कहता है कि तप्रोबेन महाद्वीप से एक नदी द्वारा

---

*यह द्वीप कई नामों से प्रसिद्ध है —

(१) लङ्का—संस्कृत में यही नाम विख्यात है जिससे यूनानी और रोमन लोग नितान्त अनभिज्ञ हैं।

(२) सीमन्दु या पालीसीमन्दु—कदाचित् संस्कृत पालीसीमन्त संस्कृत का यूनानी रूप है। यह नाम भूगोलवेत्ता टालमी के समय से पूर्व ही व्यवहार से उठ गया था।

(३) तप्रोबेन —संस्कृत का ताम्रपर्णी अनुमान किया गया है। पाली ताम्बपन्नी का यह कुछ ही परिवर्तित रूप है जो अशोक के गिरनारवाले शिलालेख में पाया गया है।

ढूंढ़ना है और उसके प्रति तब सुशील हो जाता है-यहां तक कि दोनों साथ साथ चरते हैं । जब ऋतु बीत जाती है और मादा गर्भवती हो जाती है तब हिन्दुस्तानी कर्त्तज़ौन फिर उदंड हो जाता है और एकान्त ढूढ़ता है । इसके बच्चे जब बिलकुल छोटे रहते हैं तभी प्रेसिआई के राजा के पास लाए जाते हैं और बड़े बड़े तमाशों में लड़ाए जाते हैं । किसी युवा [कर्त्तज़ौन] का कभी पकड़ा जाना स्मरण में नहीं आता ।

(२१) पथिक को जो उन पर्वतों को पार करता है जो भारतवर्ष की उस सीमा को घेरे हैं जो अत्यन्त अन्तर्भूत है लोग कहते है ऐसे ऐसे नाले उस ज़िले में मिलते हैं जिसे देशी लोग कोरौंडा [Korouda] कहते हैं, जो बड़े घने जंगलों से ढँके रहते हैं । ये Satyr के समान गढ़त के एक विलक्षण जन्तु के निवासस्थल हैं जो चारो ओर झबरीले बालों से ढँका रहता है और जिसकी पूँछ घोड़े की सी पुट्ठे से निकली हुई होती है । यदि ये जन्तु पड़े रहने पाते हैं तो झाफसों के भीतर वनफल खा कर रहते हैं; किन्तु जब वे कहीं अहेरी की तुरही और शिकारी कुत्तों का भूँकना सुन पाते हैं तब वे ऊँचे ढालुओं पर आश्चर्य्यजनक गति के साथ झपट जाते हैं, क्योंकि वे पहाड़ों पर चढ़ने के अभ्यस्त होते हैं। वे अपनी रक्षा अपने पीछा करनेवालों पर पत्थर लुड़का कर करते हैं जोकि कभी कभी उनका पीछा करने वालों को मार डालता है । सब से कठिन उनका पकड़ना है जो पत्थर लुड़काते हैं । कहा जाता है कि कोई कोई प्रेसिआई के राजा के पास लाए गए हैं यद्यपि बड़ी कठिनाई और दीर्घ काल के उपरान्त, पर ये या तो रोग से पीड़ित थे अथवा बच्चों से लदी हुई मादा थीं, जो भागने में असक्त थीं अथवा जो गर्भ के भार से रुक जाती थीं ।

—— o ——

खण्ड १६

Pliny, History, Nat. VIII 14-1

मृगाकर्षक के विषय में ।

मेगास्थिनीज़ के अनुसार साँप भारतवर्ष में इस आकार तक बढ़ जाते हैं कि वे बारहसिंहों और साँड़ों को पूरा निगल जाते हैं ।

Solinus 52-33.—

सर्प इतने भारी होते हैं कि वे पूरा बारहसिंहा तथा (उसी के) समान डील डौलवाले दूसरे जन्तुओं को निगल जाते हैं।

—oo—

खण्ड १७

Ælian Hist anim, VIII, 7,

विद्युत ईल के विषय में।

मेगास्थिनीज़ से मुझे ज्ञात हुआ है कि भारतसमुद्र में एक छोटी जाति की मछली होती है जो जब तक जीवित रहती है कभी नहीं देखी जाती, क्योंकि वह सदैव गहरे पानी में तैरती है। और सतह पर तभी उतराती है जब मर जाती है। यदि कोई इसको छू लेता है तो वह बेहोश और मूर्छित हो जाता है—यहां तक कि अन्त में मर ही जाता है।

खण्ड १८

Pliny, Hist, Hat VI 24 1

* तप्रोबेन के विषय में।

मेगास्थिनीज कहता है कि तप्रोबेन महाद्वीप से एक नदी द्वारा

---

*यह द्वीप कई नामों से प्रसिद्ध है —

(१) लङ्का—संस्कृत में यही नाम विख्यात है जिससे यूनानी और रोमन लोग नितान्त अनभिज्ञ हैं।

(२) सीमन्दु या पालीसीमन्दु—कदाचित् संस्कृत पालीसीमन्त संस्कृत का यूनानी रूप है। यह नाम भूगोलवेत्ता टालमी के समय से पूर्व ही व्यवहार से उठ गया था।

(३) तप्रोबेन —संस्कृत का ताम्र पर्णी अनुमान किया गया है। पाली ताम्बपन्नी का यह कुछ ही परिवर्तित रूप है जो अशोक के गिरनारवाले शिलालेख में पाया गया है।

जुदा किया गया है और निवासीगण *पलैगोनोई [Plaigonoi] कहलाते हैं और उनका देश भारतवर्ष की अपेक्षा अधिक सोना और बड़ी मोती उत्पन्न करनेवाला है।

Solin 53-3 —

'तप्रोबेन' बीचो बीच बहती हुई एक नदी द्वारा भारतवर्ष से जुदा किया गया है; क्योंकि उसका एक भाग जंगले पशुओं तथा उनसे बहुत बड़े हाथियों से भरा है जिन्हें भारतवर्ष उत्पन्न करता है, और दूसरे पर मनुष्य का आधिपत्य है।

---

(४) सेलाइस—(कदाचित् सेलाइन अधिक उपयुक्त है) सरडिवस, सिरलेडिवा, सरनदीव, जैलम, सीलोन। ये सब सिंगल से निकले हुए जान पड़ते हैं जो "सिंहल" का प्राकृत रूप है। 'दिव' विभक्ति संस्कृत द्वीप को सूचित करती है।

*प्रो॰ लैसन ने पलैगोनोई नाम का हेतु बतलाने का यह कह कर यत्न किया है "हमें अनुमान करना चाहिए कि मेगास्थिनीज़ उस भारतीय कथा से जानकार था कि उस द्वीप के आदमनिवासी राक्षस या दैत्य कहे जाते थे जो संसार के उत्पन्नकर्ताओं के सन्तान थे जिन्हें उसके लिये पलैगोनोई कहना उपयुक्त ही था। ये इसके विरुद्ध कहा जा सकता है कि इस अपूर्व तथा असाधारण शब्द से मेगास्थिनीज़ का अभिप्राय उस जाति का नाम बतलाने का था न कि विवरण देने का। और फिर मेगास्थिनीज की नामों के अनुवाद करने की बात नहीं है वरन् उन्हें ध्वनि के अनुरूप बनाने की है। अन्त में थोड़ी ही दूर आगे हम तप्रोबेन और उसकी राजधानी का नाम पालिसीमन्दु पाते हैं जो 'पलैगोनोई' के बिल्कुल समान है। अत जैसे लैसन साहिब राजधानी के 'पाली-सीमन्दु' नाम को संस्कृत 'पालीस्यमन्त' बतलाते हैं [पवित्र उपदेश का केन्द्र], वैसेही 'पलैगोनोई' नाम संस्कृत 'पालीजनः' का रूप बतलाना मैं उचित समझता हूं। Schwanbeck

खण्ड १९

Autigon, Caryst 647

सामुद्रिक पेड़ों के विषय में

'इण्डिका' का प्रणेता मेगास्थिनीज़ बतलाता है कि भारत-समुद्र में पेड़ उगते हैं।

खण्ड २०

Arr. Ind 4-2-13

सिन्ध और गंगा के विषय में।

(एरियन का अनुवाद देखो)

खण्ड २० (ख)

Plniy. Hist, Nat. VI. 21-9-221

प्रीनस और केनस [गंगा की एक सहायक] दोनों जलयात्रा योग्य नदियाँ हैं। वे जातियाँ जो गंगा के किनारे बसती हैं उनमें से एक कालिङ्ग [Calingæ] है, जो समुद्र से अत्यंत निकट और मण्डे [Mandei] के ऊपर हैं, और दूसरी मल्ली है जिनके बीच मलस पर्वत है। इस समस्त देश की सीमा गंगा है। कुछ लोगों ने कहा है कि यह नदी नील के समान बेजाने उद्गमों से निकलती है और उसी प्रकार जिस देश से हो कर बहती है उसे सींचती है; और कोई कोई उसका उद्गमस्थान स्कीदियन पर्वतों के बीच बताते हैं। उन्नीस नदियां उसमें गिरती हुई कही जाती हैं, जिनमें से ऊपर लिखी हुई को छोड़ कांडोचेटस् [Condochatos] इरन्नोबोआस् [Erannoboas], कोसोगुस् [Cosoagus], और सोनस् [Sonus] जलयात्रा योग्य हैं। दूसरे विवरणों के अनुसार यह अपने झरने से तुरन्त भीषण गर्जन के साथ निकल पड़ती है और एक ढालू

और पथरीले दरार से उतर कर मैदान में पहुँचतेही एक झील में ठहर जाती है जहाँ से धीमी धारा से वह आगे बढ़ती है, कहीं कहीं पर वह आठ मील से कम चौड़ी नहीं है और उसकी औसत चौड़ाई सौ स्टेडिया है, और उसकी कम से कम गहराई बीस पोरसा है।

Solin 52 6-7:—

भारतवर्ष में सब से बड़ी नदियां गङ्गा और सिन्ध हैं—गंगा, जैसा कि कुछ लोग मानते हैं अज्ञात उद्गमों से निकलती है और नील (Nile) के समान तटों तक बढ़ जाती है; पर कुछ लोग विचारते हैं कि वह स्कीदियन पर्व्वतों से निकलती है। भारतवर्ष में प्रतिष्ठित नदी ह्यूपानिस* [Hupanis] है जो सिकन्दर की चढ़ाई की सीमा थी जैसा कि उसके तट पर की वेदियाँ सूचित करती हैं। गंगा की कम से कम चौड़ाई आठ मील है और अधिक से अधिक २० मील। उसकी गहराई जहां अत्यन्त कम है वहां पूरी सौ फुट है। [मिलाओ खण्ड २५-१]

कोई कोई कहते हैं कि कम से कम चौड़ाई ३० स्टेडिया है और कोई केवल तीन ही, पर मेगास्थिनीज़ कहता है कि औसत चौड़ाई १०० स्टेडिया है और उसकी अत्यन्त कम गहराई २० आर्गी है।

खंड २१

Arr. Gud. 6—2-3.

† शिलास नदी के विषय में।

(एरियन का अनुवाद देखो)

---

* ह्यूपानिस—अर्थात् सतलज

† प्रोफेसर लैसन ने इस कथा का उदाहरण भारतीय साहित्य से भी दिया है, "भारतवासी समझते हैं कि शिलास नदी उत्तर में है, प्रत्येक वस्तु उसमें डूब जाती है..........वहां हर एक वस्तु डूब जाती है कोई नहीं तैरती। —महाभारत २-१८९८। शिला=पत्थर।

खण्ड २२

Boissonade Alucd Græc. I. p 419

शिलास नदी के विषय में।

भारतवर्ष में शिलास कहलानेवाली एक नदी है जो उस झरने के नाम पर है जिससे वह बहती है; उसमें कोई चीज़ जो डाली जाती है नहीं उतराती परन्तु हर एक चीज़ साधारण नियम के विरुद्ध तले बैठ जाती है।

खण्ड २३

Strabo, xv 1,38 p 703

शिलास नदी के विषय में।

[मेगास्थिनीज़ कहता है] कि पहाड़ी देश में एक नदी 'शिलास' है जिसके पानी पर कोई वस्तु नहीं उतराती। डिमाक्रिटस [Demokritos] जिसने एशिया के बहुत से भागों में यात्रा की थी, इस पर विश्वास नहीं करता, तथा अरस्तू भी इसे नहीं मानता।

खण्ड २४

Arr.Ind 5 2

भारतीय नदियों की संख्या के विषय में।

(एरियन का अनुवाद देखो)

पुस्तक २

खण्ड २५

Strabo XV. 1 35-36-P 702

पाटलिपुत्रनगर के विषय में।

मेगास्थिनीज़ के अनुसार औसत चौड़ाई [गंगा की] सौ

स्टेडिया है और उसकी अत्यन्त कम गहराई बीस पोरसा। इस नदी और एक दूसरी नदी के सङ्गम पर पालिबोथ्रा स्थित है जो लम्बाई में ८० स्टेडिया और चौड़ाई में १५ स्टेडिया है। यह ... ... के आकार का है और काठ की दीवार से घिरा है जिसमें तीर छोड़ने के लिये छेद कटे हैं। इसके सामने रक्षा के निमित्त तथा नगर का मैला बहाने के लिये एक खाई है। वे लोग जिन के देश में यह नगर स्थित है सारे भारतवर्ष में सब से प्रख्यात हैं और प्रेसिआई कहलाते हैं। राजा को अपने कुल के नाम के अतिरिक्त पालिबोथ्रास का उपनाम रखना पड़ता है, जैसा कि सेण्ड्राकोटस ने किया था, जिस के पास मेगास्थिनीज़ दूत बना कर भेजा गया था। [यह रीति पार्थियन [Parthians] लोगों के बीच भी प्रचलित है, क्यों कि सब के सब अर्सकाई [Arskai] कहलाते हैं यद्यपि प्रत्येक कोई निज का अद्भुत नाम रखता है जैसे ओरोडीज़, फ़रशातीस या कोई और।]

इसके आगे ये वाक्य हैं—

हयूपानिस के आगे समस्त देश बहुत उपजाऊ रहता है लेकिन उस के विषय में स्पष्टरूप से बहुत कम ज्ञात है। कुछ तो अनभिज्ञता के कारण और कुछ उसकी स्थिति की दूरी के कारण उसके विषय में प्रत्येक बात या तो बहुत बढ़ाई गई है अथवा आश्चर्य्यजनक करके दिखलाई गई है; उदाहरण के लिये सोना खोदनेवाली चीटियों, विलक्षण स्वरूप और अद्भुत शक्तियों को धारण करनेवाले जन्तुओं तथा मनुष्यों की कथायें हैं; जैसे * सीरिस [Seres] जिन्हें लोग कहते हैं कि इतने दीर्घजीवी होते हैं कि वे २०० वर्ष से अधिक की अवस्था तक पहुंच जाते हैं। लोग ५०० मन्त्रियों से संयुक्त प्रधानपालित शासन की भी चर्चा करते हैं जिनमें से प्रत्येक, राज्य को एक एक हाथी भेंट करता है।

---

* यह किसी जाति विशेष का नाम नहीं था वरन् असम्बद्धरूप से उस देश के निवासियों को सूचित करने के अर्थ प्रयोग किया जाता था जहां रेशम उत्पन्न होता था जिसको चीनी और जापानी में 'सीर'

मेगास्थिनीज़ के अनुसार सब से बड़े बाघ प्रेसिआई के देश में मिलते हैं—इत्यादि [मिलाओ खण्ड १२]

खण्ड २६

Arr. Ind 10.

पाटलिपुत्र तथा भारतवासियों की रीति व्यवहार के विषय में।

आगे यह कहा जाता है कि भारतवासी मृतक के लिये कोई स्मारक नहीं उठाते वरन् उस सत्यशीलता को जिसे मनुष्यों ने अपने जीवन में दिखलाया है, तथा उन गीतों को जिनमें उनकी प्रशंसा वर्णित रहती है, वे मरणानन्तर उनके स्मारक को बनाए रखने के लिये काफ़ी समझते हैं। किन्तु उनके नगरों के विषय में कहा जाता है कि उनकी संख्या इतनी बड़ी है कि ठीक ठीक नहीं बताई जा सकती, पर ऐसे नगर जो नदियों के तटों पर वा समुद्र के किनारे स्थित हैं ईंटों के स्थान पर लकड़ी के बने हैं क्योंकि वे थोड़े ही काल तक चलने के लिये बनते हैं— गहिरा मेह जो बरसता है तथा नदियां जब वे अपने किनारों के ऊपर बढ़ आती हैं और मैदान को तराबोर कर देती हैं सर्वनाशिनी होती हैं। पर ऐसे नगर जो खुली जगह पर तथा ऊँचे ऊँचे टीलों पर बसे हैं ईंट और गारे से बने हैं; और भारतवर्ष में सबसे बड़ा नगर वह है जो प्रेसिआई के राज्य में पालिबोथ्रा कहलाता है,

---

नाम है। साधारण सम्मति इस देश (Serica सीरिका) को पूर्वीय मंगोलिया तथा चीन के उत्तर-पूर्व में बतलाती है। परन्तु पूर्वी तुर्किस्तान में, गंगा के उद्गम की ओर हिमालय में, तथा आसाम में यहां तक कि पेरू में भी इसका स्थान बताया गया है। यह नाम पहिले पहिल केटेशियस [Ktesias] में मिला है।

जहां पर इरन्नावोआस और गंगा की धारा मिलती है—गंगा तो सब नदियों से बड़ी है और इरन्नावोआस कदाचित् भारतीय नदियों में तीसरी बड़ी नदी है यद्यपि यह और जगह की सब से बड़ी न दियों से भी बड़ी है; पर वह जहां गंगा में गिरती है वहां उस से छोटी है। मेगास्थिनीज़ हमें सूचित करता है कि यह नगर बस्ती में चारो ओर ८० स्टेडिया की विपुल लम्बाई में फैला हुआ था, और उसकी चौड़ाई १५ स्टेडिया थी, और एक खाई उसको चारो ओर से घेरे थी जो ६०० फुट चौड़ाई में और ३० क्यूबिट् गहराई में थी, और दीवार [शहरपनाह] ५७० बुर्जों से मण्डित थी और उसमें ६४ फाटक थे। वही ग्रन्थकार आगे चल कर भारतवर्ष के विषय में यह ध्यान देने योग्य बात कहता है कि समस्त भारत वासी स्वतन्त्र हैं, उनमें से एक भी दास [Slave] नहीं है। लैकिडिमोनियन्स [Lakedœmonians] और भारतवासी इस बात में यहां तक सहमत हैं। पर लैकिडिमोनियन लोग 'हेलाट' [Helots] लोगों को दास की भाँति रखते हैं और ये 'हेलाट' सेवाकर्म्म करते हैं; परन्तु भारतवासी यत्रुओं तक को दास की भाँति नहीं रखते, अपने देशवासियों की क्या बात है।

— o —

खण्ड २७

Strabo XV. 1.53-56-PP. 709-710.

भारतवासियों की रीति व्यवहार के विषय में।

भारतवासी सब किफ़ायत से रहते हैं विशेष कर जब डेरों में रहते हैं। वे एक बड़ी अशिक्षित भीड़ नापसंद करते हैं, इसमें वे उत्तम क्रम बनाए रखते हैं। चोरी बहुत कम होती है। मेगास्थिनीज़ कहता है कि उन लोगों ने जो सन्ड्रोकोटस (चन्द्रगुप्त) के डेरे में थे, जिसके भीतर ४००००० मनुष्य पड़े थे, देखा कि चोरी जिसकी इत्तला किसी एक दिन होती थी वह २०० ड्राक्मी [Drachmæ] के मूल्य से बढ़ती कभी नहीं होती थी, और यह ऐसे लोगों के बीच जिनके पास लिपिबद्ध कानून नहीं वरन् जो लिखने से

अनभिज्ञ हैं और इसलिये जिन्हें जीवन के समस्त कार्य्यों में स्मृति ही पर भरोसा करना पड़ता है। तिस पर भी वे अपने चाल ढाल में सादे और मितव्ययी होने के कारण पूरे सुख से रहते हैं। वे यज्ञों में छोड़ मदिरा* और कभी नहीं पीते। उनका शरबत जौ के स्थान पर चावल सघटित एक रस है और उनका भोजन अधिकतर भात है। उनके कानून और उनके व्यवहार की सरलता इस बात से प्रमाणित होती है कि वे न्यायालय में बहुत कम जाते हैं। उनमें गिरवीं और धरोहर के अभियोग नहीं होते और न वे मुहर या गवाह की ज़रूरत रखते हैं, वरन् थाती रख देते हैं और एक दूसरे पर विश्वास रखते हैं। अपने घर और सम्पत्ति को वे प्रायः अरक्षित छोड़ रहते हैं। ये बातें सूचित करती हैं कि वे एक उत्कृष्ट उदार भाव रखते हैं; परन्तु वे और दूसरी बातें करते हैं जिनको कोई पसन्द नहीं कर सकता; दृष्टान्त के लिये वे सदैव अकेले भोजन करते हैं और कोई नियत घड़ी नहीं रखते जिसमें सब एक साथ मिल कर भोजन करें, परन्तु हर एक को जब इच्छा होती है खालेता है। सामाजिक और राजनैतिक जीवन के परिणाम के लिये इसके प्रतिकूल रीति उत्तम होती।

उनके शरीर को व्यायाम देने की सर्वप्रिय रीति संघर्षण द्वारा है, जो कई प्रकार से होता है, पर विशेषतः चिकने चिकने आबनूस के बेलनों को त्वचा पर फेर कर होता है। उनके समाधिस्थल सादे होते हैं और मृतक के ऊपर उठाई हुई वेदी नीची होती हैं। अपने चाल की साधारण सादगी के प्रतिकूल वे बारीकी [नफ़ासत] और सजावट के प्रेमी होते हैं। उनके वस्त्रों पर सोने का काम किया रहता है और वे [वस्त्र] मूल्यवान रत्नों से विभूषित रहते हैं, और वे लोग अ यन्त सुन्दर मलमल के बने हुए फूलदार कपड़े पहिनते हैं। सेवक लोग उनके पीछे पीछे छाता लगाए चलते हैं, क्योंकि वे सौन्दर्य्य का बड़ा ध्यान रखते हैं और अपने स्वरूप को सँवारने में कोई उपाय उठा नहीं रखते। सचाई और सदाचार दोनों की वे समान प्रतिष्ठा करते हैं। इससे बूढ़ों को वे

---

* यह मदिरा कदाचित् सोमरस हो।

कोई विशेष स्वत्व नहीं देते जब तक कि उनकी बुद्धि अधिक उत्कृष्ट न हो। वे बहुत सी स्त्रियों से विवाह करते हैं जिनको वे उनके माता पिता से, बदले में एक जूआ बैल दे कर मोल ले लेते हैं। कुछ को तो वे दत्तचित्त सहकारिणी बनाने की आशा से विवाह लाते हैं, और कुछ को केवल आनन्द के हेतु तथा घर को लड़कों से भर देने के लिये। स्त्रियां जब तक सती रहने के लिये बाध्य नहीं की जातीं व्यभिचार करती हैं। यज्ञ वा श्राद्ध में कोई मुकुट नहीं धारण करता; और वे बलिपशु को छुरी धँसा के नहीं मारते वरन् गला घोंटते हैं जिसमें कोई खण्डित वस्तु नहीं वरन् केवल वही जो समूची हो, देवता को भेंट दी जाय।

झूठी साक्षी देने का अपराधी मनुष्य अवयवभंग का दण्ड भोगता है। वह जो किसी का अङ्ग भंग कर देता है न कि केवल बदले में उसी अंग की हानि उठाता है, वरन् उसका हाथ भी काट लिया जाता है। यदि वह किसी कारीगर के हाथ वा आँख की हानि कर देता है तो वह मार डाला जाता है। वही ग्रंथकार कहते हैं कि कोई भारतवासी दास (Slave) नहीं रखते; परन्तु ओनिसिक्रिटस (Onesikritos) कहता है कि यह विलक्षणता देश के उसी भाग में थी जिस पर म्यूसिकेनस (Musikanos) राज्य करता था *।

राजा के शरीर की रखवाली स्त्रियों के सुपुर्द रहती है जो उन के माता पिता से मोल ली जाती हैं, पहरेदार तथा और बाकी सिपाही फाटकों के बाहर रहते हैं। स्त्री जो राजा को नशे में मार डालती है वह उसके उत्तराधिकारी की स्त्री होती है। पुत्र पिता के उत्तराधिकारी होते हैं। राजा दिन को नहीं भी सोता और रात को वह अपने प्राण के ऊपर साज़िशों को निष्फल करने के हेतु समय समय पर अपना बिस्तर बदलते रहने के लिये बाध्य है†।

---

* उसका राज्य सिन्ध नदी के किनारे सिन्ध में था और उसकी राजधानी कदाचित् बक्खर के पास थी।

† आवा का वर्तमान राजा जो प्रत्यक्ष में इण्डो चीनी आकार का है यद्यपि वह क्षत्रिय कुल से उत्पन्न होने का दावा करता है चन्द्रगुप्त

राजा अपना महल न कि केवल युद्ध ही के समय में छोड़ता है वरन् मामिलों की देख भाल के निमित्त भी। तब वह कचहरी में समस्त दिन रहता है और काम को रुकने नहीं देता यद्यपि वह घड़ी भी आ जाती है जिसमें उसे अवश्य ही अपने शरीर पर ध्यान देना उचित है—अर्थात् जब वह काठ के बेलनों से मला जाने को होता है। वह इधर अभियोगों को सुनता रहता है और उधर मालिश भी होती रहती है जो चार सेवकों द्वारा सम्पादित होती है। दूसरा प्रयोजन जिसके निमित्त वह अपना महल छोड़ता है बलिप्रदान करना है। तीसरा शिकार खेलने जाना है जिसके हेतु वह बक्चनेलियन (Bacchanalian) रीति के अनुसार प्रस्थान करता है। स्त्रियों की भीड़ उसे घेरे रहती है और उस घेरे के बाहर बरछेवाले रक्षक जाते हैं। मार्ग का चिन्ह रस्सों से डाला जाता है और इन रस्सों के भीतर से हो कर जाना पुरुष और स्त्री के लिये समान रूप से मृत्यु है। ढोल और झाँझ ले कर आदमी इस दल के आगे आगे चलते हैं। राजा घेरों के भीतर अहेर खेलता है और एक चबूतरे से तीर चलाता है। उसकी बगल में दो वा तीन हथियारबन्द स्त्रियाँ खड़ी होती हैं। यदि वह खुले मैदान में शिकार करता है तो वह हाथी की पीठ पर से तीर चलाता है। स्त्रियों में से कुछ तो रथ के भीतर रहती हैं, कुछ घोड़ों पर, और कुछ हाथियों पर भी; और वे हर प्रकार के शस्त्रों से सजी रहती हैं मानो वे किसी चढ़ाई पर जा रही हैं *।

[ये रीतियां हमारे यहाँ की रीतियों से मिलाने से बड़ी अद्भुत हैं परन्तु नीचे लिखी हुई इनसे भी बढ़ कर हैं, क्योंकि मेगा-

---

से बहुत मिलता जुलता एकान्तवास का जीवन बिताता है। वह अपना शयनागार हर रात को आकस्मिक् विश्वासघात से बचाव के लिये बदला करता है-Wheelers History of India Vol III p 182 Notes.

* अभिज्ञानशाकु-तल नाटक में राजा दुष्यन्त के साथ यवनिया धनुष हाथ में लिए और बनपुष्प की माला धारण किए दिखलाई गई हैं।

बालिश्त और तीन बालिश्त तक के मनुष्य होते हैं जिनमें से किसी के नाक नहीं रहती, मुँह के ऊपर केवल दो छेद रहते हैं जिनसे वे साँस लेते हैं। इन तीन बालिश्त के आदमियों के विरुद्ध, जैसा कि होमर ने कहा है, सारस लोग लड़ाई ठानते हैं तथा तीतर भी इतने बड़े होते हैं जितने राजहंस *। ये लोग सारसों के अण्डों को बटोरते हैं और नष्ट कर डालते हैं क्योंकि उन्हीं के देश में सारस अण्डा देते हैं और इसी से अण्डे तथा सारस के बच्चे किसी दूसरी जगह नहीं मिलते। प्रायः कोई सारस उस देश के लगे हुए घाव ले कर, शस्त्र की पीतल की नोक अपने शरीर में खोंसे हुए भाग आते हैं।† इनोटकैटई (Enôtokoitai) का

---

* Ktesias अपनी 'इण्डिका' में पिगमी (बौने) को भारतवर्ष ही का बतलाता है। स्वयं भारतवासी लोग उन्हें 'किराती' (Kiratœ) की जाति का मानते थे जो असभ्य थे, जंगल पहाड़ों में रहते थे, आखेट द्वारा निर्वाह करते थे और जो इतने लघु होते थे कि उनका नाम ही बौने के लिये पर्य्यायवाची हो गया। उन्हें लोग समझते थे कि वे गरुड़ों और गिद्धों से लड़ा करते हैं। चूंकि वे मंगोल वंश के थे इस कारण भारतवासी उन को उस जाति के लक्षणों से युक्त प्रदर्शित करते थे यद्यपि उनके लक्षणों को बहुत बढ़ा देते थे। इस लिये मेगास्थिनीज ने अमुक्टरीज़ (Amukteres) की चरचा की है जो बिना नाक के आदमी थे, जिनके केवल मुहँ के ऊपर सांस के लिये छिद्र रहते थे। इस में सन्देह नहीं कि प्लिनियस के स्किराइट (Scyrites) और Periplus Maris Erythrœi के Kirrhadai एक ही हैं।

† इनोटकैटई संस्कृत में कर्णप्रावरणाः कहलाते हैं; रामायण और महाभारत में इनका कई जगह उल्लेख है—जैसे महाभारत २.११७०, १८७५ में। भारतवासियों के बीच सर्वसाधारण में यह बात प्रचलित

_सान्त, तथा जङ्गली मनुष्यों और दूसरे राक्षसों का भी, जो दिया गया है ऐसा ही निर्मूल है। जङ्गली आदमी सैण्ड्राकोटस (चन्द्रगुप्त) के पास नहीं लाए जा सकते थे क्यों कि वे भोजन करना अस्वीकार करते थे और मर जाते थे। उनकी एँड़ी आगे की ओर होती है

थी कि असभ्य जातियों के कान बड़े बड़े होते हैं; जैसे न कि केवल कर्णप्रवर ही का ज़िक्र आया है वरन् कर्णिक, लम्बकर्ण, महाकर्ण, उष्ट्रकर्ण, ओष्ठकर्ण, पाणिकर्ण का भी—Schwanbeck 66। ह्वीलर साहब कहते हैं कि किसी भारतवर्ष से जानकार मनुष्य के लिये इन कहानियों में से बहुतों की उत्पत्ति बतला देना सहज है। चींटियां इतनी बड़ी नहीं होतीं जितनी लोमड़ियाँ, परन्तु वे असाधारण खोदनेवाली होती हैं। आदमियों के पेड़ उखाड़ लेने और उनको सोंटे की भाँति काम में लाने की कथाएँ महाभारत में भरी पड़ी हैं, विशेषतः भीम के कर्म्मों के प्रसङ्ग में। मनुष्यों के कान पैर तक लटकते हुए नहीं होते पर पुरुष और स्त्री दोनों लहर में कुछ वस्तुओं को घुसेड़ कर अपने कानों को कभी कभी बड़ी विलक्षण रीति से लम्बा कर देते हैं। यदि कोई कथा थी जिसने सब से बढ़ कर स्ट्रैबो (Strabo) के क्रोध को उभाड़ा तो वह यही ऐसे लोगों की थी जिनके कान पैरों तक लटकते हैं। पर यह कहानी हिन्दुस्तान में अब तक प्रचलित है। बाबूजौहरीदास कहते हैं कि " एक बुड्ढी स्त्री ने मुझ से एक बार कहा कि उसके पति ने, जो अंग्रेज़ी फ़ौज में सिपाही था ऐसे लोगों को देखा था जो एक कान पर सोते थे और दूसरे को ओढ़ते थे "—Domestic Manners and Custom of the Hindus, Benares 1860। इस कथा का पता हिमालय में लगता है। फ़िच, (Fitch) जिस ने हिन्दुस्तान में १९२९ के लगभग भ्रमण किया था, कहता है कि भूटान की एक जाति के कान एक बालिश्त लम्बे थे।

स्थिनीज़ कहता है कि काकसोस पर निवास करनेवाली ज़ातियाँ स्त्रियों के साथ खुले मैदान में प्रसंग करती हैं और अपने बान्धवों का शव भक्षण करती हैं *। ऐसे बन्दर होते हैं जो पत्थर लुड़काते हैं—इत्यादि (खण्ड XV आगे है और फिर खण्ड २६)

— o —

खण्ड २७ (ख)

Ælian V L IV 1

भारतवासी न तो सूद पर रुपया देते हैं और न जानते हैं कि किस प्रकार उधार लेना चाहिए, किसी भारतवासी का हानि करना वा सहना स्थिर रीति के विरुद्ध है इसलिये न तो वे मुआहिदा करते हैं और न ज़मानत चाहते हैं।

खण्ड २७ (ग)

Nical Damse 44, Stob Serm 42

भारतवासियों के बीच जो अपना कर्ज़ा वा थाती वसूल करने में असमर्थ होता है उसके लिये कानून में कोई चारा नहीं है। जो कुछ महाजन कर सकता है वह इतना ही कि अपने का एक दुष्ट पर विश्वास करने के लिये धिक्कारे।

खण्ड २७ (घ)

वह जो किसी कारीगर की आँख वा हाथ की हानि करता है मार डाला जाता है। यदि कोई किसी बड़े जघन्य अपराध का दोषी होता है तो राजा उसके बालों को मुड़वा देने की आज्ञा देता है क्योंकि यह दण्ड अत्यन्त ही निन्द्य है।

---

* हेराडोटस ने इन दोनों प्रथाओं का अस्तित्व किसी किसी भारतीय जाति में देखा था। (Bk III 38, 99, 101)

खण्ड २८

Athen iv. p, 153

भारतवासियों के भोजन के विषय में।

मेगास्थिनीज़ अपनी 'इंडिका' पुस्तक के दूसरे भाग में कहता है कि जब भारतवासी खाने बैठते हैं तो प्रत्येक व्यक्ति के सामने एक चौकी रक्खी जाती है जिस पर पहिले चावल धरा जाता है, जो ऐसा उसिना रहता है जैसे कोई जौ उसिने और तब वे ऊपर से बहुत से पकान्न रखते हैं जो हिन्दुस्तानी सामग्रियों के अनुसार तैय्यार किए जाते हैं।

—o—

* खण्ड २९

Strabo XV. 1.57–P. 711.

कल्पित जातियों के विषय में।

परन्तु कहानियों की ओर झुक कर वह कहता है कि पांच

---

*Cf. Strabo II 1 9.—P. 70 —डिमाकास और मेगास्थिनीज़ विशेष कर के विश्वास के अयोग्य है। ये ही लोग ऐसे ऐसे मनुष्यों की कथाएँ कहते हैं जो अपने कानों में सोते हैं, जो बिना मुँह के होते हैं, जो बिना नथुनों के होते हैं, जिनके एक ही आख होती है, जिन की लम्बी लम्बी टाँगे होती हैं तथा ऐसे मनुष्यों की जिनके पैर की अँगुलिया पीछे को होती हैं। उन्होंने होमर की सारस और बौनों के बीच की लड़ाई की कहानी को, यह कह कर कि दूसरे बौने तीन बालिश्त की ऊँचाई के होते थे, नए सिरे से कहा है। उन्हों ने चींटियों की चरचा की है जो सुवर्ण के लिये पृथ्वी खोदती हैं और पास की जो .... . . के आकार के सिरवाले होते हैं तथा ऐसे सर्पों की जो बैल और बारहसिंहों को पूरा सींग समेत निगल जाते हैं।

और तलवा तथा पैर की अँगुलियां पीछे की ओर घूमी रहती हैं *। कोई कोई राजसभा में लाए गए थे जिनके मुँह नहीं थे और जो पालतू थे। वे गंगा के उद्गमों के निकट रहते हैं और भुने हुए मांस के स्वाद तथा फूल और फलों की सुगंधि पर निर्वाह करते हैं; मुँह के स्थान पर उनके छिद्र होते हैं जिन से वे सांस लेते हैं। वे बुरी गन्ध की वस्तुओं से कष्ट पाते हैं और इसी लिये वे कठिनता से अपना जीवन रख सकते हैं, विशेष कर डेरों में। दूसरे राक्षसों की चरचा करते हुए दार्शनिकों ने उस से † आकुपेडीज़ (Okupedes) के विषय में कहा, जो लोग दौड़ने में घोड़ों को पीछे डाल सकते थे, तथा इनोकैटई के विषय में जिनके कान उनके पैरों तक लटकते हुए होते थे जिससे वे उन में सो सकते थे, और वे इतने बलिष्ट होते थे कि पेड़ उखाड़ सकते थे। धनुष की प्रत्यञ्चा तोड सकते थे। औरों के साथ मनोम्मटोई (Manommatoi) की भी [चर्चा हुई है] जिनके कान कुत्तों के ऐसे होते हैं, उनकी एक आँख उनके मस्तक के बीच में होती है, बाल सीधे खड़े होते हैं और उनकी छाती झबरीली होती है; तथा अमुक्तीरिज [Amuk-

* इन जङ्गली मनुष्यों की चर्चा Ktesias और Bacto ने भी की है। वे अपने पैर की विलक्षण बनावट के कारण एण्टिपोडीज़ कहलाते थे और इथियोपियन जातियों में गिने जाते थे यद्यपि रामायण और महाभारत में कई जगह इनका उल्लेख पश्चादङ्गुलनाः के नाम से हुआ है—Schwanbeck।

† आकुपडीज थोड़े से परिवर्तन के साथ संस्कृत 'इकपदम' का यूनानी में अवतरण है, जो पैरों की गति के लिये प्रसिद्ध किराती (Kiratee) की एक जाति का नाम है, जो गुण यूनानी शब्द से प्रगट होता है। Ktesias ने मोनापडीज़ की चर्चा की है पर उसने उन्हें स्कायपोडीज़ (Skiapodes) के साथ गड़बड़ कर दिया है जो अपने पैरों की छाया ओढ़ते थे।

ôser] की भी जो विना नथुने के मनुष्य होते हैं जो प्रत्येक वस्तु खाते हैं, कच्चा मांस भक्षण करते हैं तथा अल्पजीवी होते हैं और वृद्धावस्था के आने के पहिले ही मर जाते हैं। उनके मुंह का ऊपरी भाग निचले ओठ के ऊपर बड़ी दूर तक बढ़ा रहता है। हाइपर बोरियन लोगों (Hyperboreans) के विषय में, जो हज़ार वर्ष जीते हैं, वे वही वृत्तान्त कहते हैं जो सिमोनिडीज़, (Simonides) पिंडरस (Pindaros) तथा और दूसरी अलौकिक कथाओं के प्रणेताओं ने कहा है*। टिमाजिनीज़ (Timagenes) ने जो कथा

---

*यूनानी कवि पिण्डर ने, जो हाइपरबोरियन्स को ईस्टर (Ister) नदी के मुहाने के पास कहीं बतलाता है, उनके विषय में लिखा है (10thPythian Ode 11 46 to 69) मेगास्थिनीज़ को यह निरीक्षण करने की सूक्ष्मता थी कि हाइपरबोरियन की यूनानी कथा का भारतीय उत्पत्तिस्थान 'उत्तरकुरु' सम्बन्धी कथाओं में था। इस शब्द के अर्थ होते हैं "उत्तर के कुरु"। P. R. De. Saint Tuartin कहते हैं कि "संस्कृत वाक्य 'उत्तरकुरु' की ऐतिहासिक उत्पत्ति अज्ञात है पर उसके अर्थग्रहण में कभी भेद नहीं पड़ता। उपवैदिक साहित्य की समस्त पुस्तकों में, महाकाव्यों में, पुराणों में,—साराश यह कि जहां कहीं यह शब्द मिलता है यह काव्य और कल्पना के भूगोल से सम्बन्ध रखता है। 'उत्तरकुरु' जीवधारी संसार के कहीं आगे उत्तर के अत्यन्त दूरस्थित भूभाग में उन पहाडों के नीचे जो मेरुपर्वत को घेरे हैं स्थित हैं। यह यक्षों और पवित्र ऋषियों का निवासस्थान है जिनकी आयु कई हज़ार वर्ष तक पहुँचती है। मनुष्यों का उसके भीतर प्रवेश वर्जित है। पाश्चात्य कथाकारों के हाइपरबोरियन देश के समान यह भी सदा वसन्त के सुखमय स्वत्व को भोगता है और शीत तथा ग्रीष्म के आधिक्य से वञ्चित है, वहा आत्मा का खेद और शरीर का क्लेश लोग नहीं जानते .... । यह पूर्ण तथा स्पष्ट है कि यह भाग्यमानों की भूमि हमारे लोक की नहीं है ॥

कहा है कि तांबे के बूंदों की वर्षा होती है जो एक साथ बटोरे

"सिकन्दर की चढाई के उपरान्त भारतवासियों के समागम से यूनानी लोग उन बहुत सी ब्राह्मणकाव्य की कहानियों से जानकार हो गए जिनसे भारतवर्ष उन्हें मायावियों (Prodiqies) का देश दिखाई देने लगा। मेगास्थिनीज़ ने अपने पूर्ववर्ती टीशियस के समान बहुत सी ऐसी कथाओं का संग्रह किया था, सो या तो उसी के विवरणों से अथवा समकालीन आख्यानों से, जैसे Deimachos का, उत्तरकुरु की कहानी पश्चिम में फैली, क्योंकि प्लिनी के कथनानुसार अमोमीटस (Amômêtus) नामी किसी व्यक्ति ने उनके विषय में एक पुस्तक हिकेटियस (Hecatæus) के हाइपरबोरियन सम्बन्धी ग्रन्थ के ढंग पर रची थी। अवश्य ही इसी (Amometus) की पुस्तक से प्लिनी ने उन दो पंक्तियों को लिया जिन्हें उसने अपने अटोकोरी (Attacoræ) के उपलक्ष में कहा है कि "सूर्य्य से तप्त पर्व्वतों का मण्डल उन्हें विषैली वायु से रक्षित रखता था और वे हाइपरबोरियनों की नाईं चिरबसन्त का सुख भोगते थे। (Pliny. loc. cit. Ammianus Marcellinus XXIII. 6. 64) । वेगनर (Wagner) इस वर्णन को समस्त सीरिस (Seres) के ऊपर घटाता है [Pliny की Attacoræ जिसकी एक शाखा है) और कुछ वर्तमान समालोचकों का विश्वास है कि इसमें चीन के कहकहा दीवार की चर्चा है। इसके अतिरिक्त अनेकानेक और उदाहरणों से हम देखते हैं कि भारतवर्ष की काव्यमयी कथाओं और लोकप्रिय कहानियों ने यूनानी आख्यानों में जाते समय यथार्थता तथा एक प्रकार की ऐतिहासिक अनुकूलता का रूप धारण कर लिया। (E'tude, surla. Geographic, Griecque et Latine, de Inde, pp. 413-414) वही ग्रन्थकार कहता है (p. 412) "सीरिका (Sêrica) के लोगों में टाल्मी ओटरकोरी

जाते हैं, गप्प है। मेगास्थिनीज कहता है—जो कि अधिक विश्वास योग्य है, क्योंकि *आइबेरिया में भी यही होता है—कि नदियां स्वर्णरज ले आती हैं और उसका एक अंश राजा को कर की भांति दिया जाता है।

खण्ड ३०

Pliny Hist Nat. VII. ii. 14-22.

कल्पित जातियों के विषय में।

मेगास्थिनीज़ के अनुसार नुलो (Nulo) नामक पर्वत पर

[Ottorocorrhae] को गिनता है, जिसे प्लिनी में अटकोरी [Attacoræ] कर के लिखा है और जिसको [Ammanus Marcellinus] अमेनस मारसिलिनस ने, जो टालमी का अनुकरण करता है आपुरोकरा [Opurocarra] बना लिया है" । इस नाम के भीतर संस्कृत पुस्तकों के 'उत्तरकुरु' का पता लगा लेना कोई कठिन नहीं है।

श्वानबक (पृ० ७०) प्रो० लैसन को उद्धृत करते हैं जो लिखते हैं कि "उत्तरकुरु सीरिका का एक भाग है और चूँकि भारतवर्ष के प्रथम वृत्तान्त पश्चिम में सीरिस से आए इससे कदाचित् सीरिस का कोई अंश भारतीय 'उत्तरकुरु' की कहानियों से सिद्ध हो। सीरिस की दीर्घायु की कथा का भेद भी इसी प्रकार खुल सकता है विशेष कर जब मेगास्थिनीज़ हाइपरबोरियन लोगों की आयु को १०० वर्ष आंकता है। महाभारत का बचन है की उत्तरकुरु १००० वा १०००० वर्ष तक जीते हैं, (६-१६४) इससे यह सिद्धान्त निकलता है कि मेगास्थिनीज़ ने भी 'उत्तरकुरु' ही के विषय में लिखा है और उसने जो उनके नाम को 'हाइपरबोरियन' बना डाला वह अनुचित नहीं किया।
Zeitschr. II. 67.

* स्पेन नहीं किन्तु कैस्पियन और कालासागर के मध्य का देश जो अब जार्जिया कहलाता है।

मनुष्य रहते हैं जिनके पैर पीछे को घूमे रहते हैं और जिनके प्रत्येक पैर में आठ आठ अँगुलियाँ होती हैं; और बहुत से पहाड़ों पर एक जाति ऐसे मनुष्यों की रहती है जिनका सिर कुत्तों के ऐसा होता है, जो बनैले पशुओं की खाल पहिनते हैं, जिनकी बोली भूँकने की भी होती है और जो पंजों से संयुक्त होने के कारण अहेर पर और चिड़िया पकड़ के निर्वाह करते हैं*। [टिशियास अपने ही आधार पर कहता है कि इन मनुष्यों की संख्या १२०००० के ऊपर थी; और भारतवर्ष में एक जाति है जिसकी स्त्रियाँ अपने जीवन भर में केवल एक बार सन्तति प्रसव करती हैं और उनके बच्चे तुरन्त श्वेतकेश हो जाते हैं।] ... ...
... ...

घूमनेवाले भारतवासियों के बीच मेगास्थिनीज़ एक जाति के मनुष्यों की चर्चा करता है जिनके नथुनों की जगह पर केवल छेद होते हैं, जिनकी टाँगें सर्पों की भाँति संकुचित होती हैं और जो स्किरिटी (Scyritæ) कहलाते हैं। पूर्व की ओर भारत के छोर पर गंगा के उद्गम के निकट बसनेवाली अस्टोमी (Astomi) जाति के लोगों का भी मेगास्थिनीज़ ज़िक्र करता है जिनके मुँह नहीं होता, जो अपने शरीर को, जो सर्वत्र लोमपूरित होता है चिकने रोंगटों से जो पेड़ों की पत्तियों पर मिलते हैं, ढाँकते हैं; और जो केवल साँस ले कर तथा नासिका द्वारा खींची हुई सुगंध से ही जीते हैं, वे न कुछ खाते हैं और न पीते हैं। उन्हें केवल जड़ों, फूलों और जंगली सेबों की भाँति भाँति की सुगन्धि ही की आवश्यकता होती है। जब वे किसी दूर देश को जाते हैं तब सेब वे अपने साथ ले लेते हैं जिसमें सदा उनके पास कोई वस्तु सूँघने को रहे। अत्यंत कड़ी गन्ध उन्हें शीघ्र मार डालेगी।

अस्टोमी के आगे पर्वतों के अत्यंत दूरस्थित भागों में त्रिसपिथामी और बौने लोगों का निवासस्थान कहा जाता है। वे ऊँचाई में हर एक तीन बालिश्त के होते हैं—अर्थात् २७ इंच से अधिक नहीं।

---

* Ktesias ने इन्हें Kvuokeadoı कहा है, और संस्कृत में ये 'श्वानमुख' कहलाते हैं।

उनकी जलवायु स्वास्थ्यकर है और वे पर्वतों की रुकावट की ओट में जो उत्तर की ओर उठे हैं चिरवसन्त भोगते हैं। वे वही हैं जिनको होमर ने सारसों की चढ़ाई से कष्ट पाते हुए कहा है। उनके विषय में कथा यह है कि मेढ़ों और बकरों की पीठ पर चढ़ के, और बाणों से सुसज्जित हो के वे वसन्तकाल में सब एक झुण्ड में समुद्र की ओर चढ़ाई करते हैं और उन पक्षियों के अण्डों और बच्चों को नष्ट कर डालते हैं। इस वार्षिक चढ़ाई को समाप्त करने में सदैव उन्हें तीन महीने लगते हैं, और यदि वे यह न करें तो वे आगामी वर्षों के विपुल समूह से अपनी रक्षा न कर सकें। उनके झोपड़े मिट्टी, परों और अण्डों के छिल्कों के बने होते हैं। [अरस्तू कहता है कि वे गुफाओं में रहते हैं, पर और बातों में वह वही विवरण देता है जो दूसरे देते हैं।]

[Ktesias टिसियास से हम सुनते हैं कि इस जाति के अन्तर्गत कुछ लोग हैं जो पंडोरी Pandoti) कहलाते हैं और घाटियों में बसते हैं, और २०० वर्ष जीते हैं, उनके बाल युवावस्था में भूरे रहते हैं और वृद्धावस्था में काले हो जाते हैं। प्रत्युत कुछ लोग ४० वर्ष की अवस्था से आगे नहीं जीते—ये प्रायः मक्रोबिआई (Macrobii) से सम्बन्ध रखते हैं जिनकी स्त्रियां केवल एक बार सन्तान प्रसव करती हैं। अगथारचिडीज (Agatharchides) उनके विषय में यही कहता है पर इतना और बढ़ा कर कि वे टीडियों पर निर्वाह करते हैं और पैर के तेज होते हैं।] क्लिटार्कस (Clitarclus) और मेगास्थिनीज उन्हें * मण्डी (Mandi) कहते हैं और उनके ग्रामों की संख्या तीन सौ आंकते हैं। स्त्रियां सात वर्ष की अवस्था में बच्चे जनती हैं और चालीस वर्ष में बुड्ढी हो जाती हैं।

——ooo——

खण्ड ३० (ख)

Solin 52 26—30

एक पहाड़ के निकट जो 'नुलो' कहलाता है, मनुष्य रहते हैं

---

* कदाचित् इसे पाण्डई (Pandai) पढ़ना चाहिए। हा यदि मेगास्थिनीज का अभिप्राय मन्दराचल के निवासियों से हो तो दूसरी बात है।

जिनके पैर पीछे की ओर घूमे रहते हैं और उनके प्रत्येक पैर में आठ आठ अँगुलियां होती हैं। मेगास्थिनीज़ लिखता है कि भारतवर्ष के भिन्न भिन्न पर्व्वतों पर कुत्ते की नाईं सिरवाले, पंजो से सयुक्त चमड़ों से ढँके ऐसे मनुष्यों की जातिया हैं जो मानवी भाषा के स्वर में नहीं बोलतीं वरन् केवल भूँकती हैं और उनके भयानक निकले हुए जबड़े होते हैं। [टीशियास में हम पढ़ते हैं कि कुछ भागों में स्त्रियाँ केवल एक वार सन्तान प्रसव करती हैं और बच्चे जन्म ही से श्वेत केशवाले होते हैं–इत्यादि]

······जो गंगा के उद्गम के निकट रहते हैं और भोजन के रूप में किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं रखते हैं, जंगली सेवों की सुगन्धि पर निर्वाह करते हैं, और जब वे लम्बी यात्रा को चलते हैं तब उन्हें अपने जीवन की रक्षा के निमित्त साथ ले लेते हैं जिसका पालन वे उनकी सुगन्धि ही सूँघ कर कर लेते हैं। यदि वे अत्यन्त निकृष्ट वायु सूँघ जायँ तो मृत्यु अनिवार्य्य है।

खण्ड ३१

(Plutarch, de facie in orbe lunœ—opp. ed. Reisk tom IX P. 701)

विना मुख के मनुष्यों की जाति के विषय में।

··· क्योंकि कैसे कोई वहां उस हिन्दुस्थानी जड़ को उगा हुआ पा सकता है जिसकी सौरभमयी गंध से, मेगास्थिनीज़ कहता कि एक जाति के मनुष्य, जो न खाते हैं और न पीते हैं और जो यथार्थ में मुँह तक नहीं रखते, अपना जीवन सँभालने के हेतु उसे लोवान की भांति जलाते हैं जब तक कि वह (जड़) चन्द्रमा से शीतलता न प्राप्त करती हो।

पुस्तक ३

खण्ड ३२

Arr. Ind XI., XII. 9.

(एरियन की इंडिका का अनुवाद देखो)

खण्ड ३३

Strabo XV. 1 39—41, 46—49 pp. 703,704,707.

भारतवासियों की सात जातियों के विषय में।

उस (मेगास्थिनीज़) के अनुसार भारतवर्ष की बस्ती सात भागों में विभक्त है। दार्शनिक लोग प्रतिष्ठा में प्रथम हैं, किन्तु संख्या के विचार से वे सब से छोटे वर्ग में हैं। उनके कृत्य निज की ओर से उन लोगों द्वारा नियुक्त किए जाते हैं जो बलिप्रदान वा और दूसरे धार्म्मिक विधान करना चाहते हैं; तथा राजाओं के द्वारा भी वहां पर जो बड़ा Synod कहलाता है, जहाँ पर वर्ष के आरम्भ में समस्त दार्शनिकगण द्वारों पर राजा के सामने इकट्ठे होते हैं, जब कोई दार्शनिक कोई उपयोगी प्रस्ताव लिख लाता है वा फ़सल और चौपायों की उन्नति के लिये अथवा सर्वसाधारण की हितवृद्धि के लिये कोई उपाय सोचता है तब वह उसे सबके सामने कहता है। यदि कोई तीन बार झूठी सूचना देते हुए देखा जाता है तो न्याय उसे उसके शेष जीवन भर के लिये मौन रहने का दण्ड देता है, परन्तु वह जो गम्भीर सम्मति देता है राज्य कर वा और कोई चन्दा देने से मुक्त कर दिया जाता है।

(४०) दूसरी जाति में किसान लोग सयुक्त हैं जो बस्ती के बीच सब से अधिक हैं और स्वभाव के बड़े सीधे और सज्जन होते हैं। वे सैनिक सेवा से मुक्त रहते हैं और अपनी भूमि को बिना किसी आशका से विचलित हुए जोतते हैं। वे नगरों में कभी नहीं जाते, क्या भीड़ भाड में योग देने के लिये क्या और किसी कार्य के लिये। इसलिये यह प्राय: होता है कि एक ही समय और देश के एक ही भाग में, कुछ मनुष्य तो युद्ध की पंक्ति में खड़े और अपने जीवन को भय में डाल कर लड़ते हुए देखे जाते हैं और दूसरे मनुष्य पास ही पूरी सुरक्षा के साथ गोड़ते और जोतते हैं, क्योंकि सिपाही उनकी रक्षा के निमित्त रहते हैं। समस्त भूमि राजा की है और किसान लोग उपज का चौथाई लेने की शर्त पर जोतते हैं।

(४१) तीसरी जाति में चरवाहे और अहीर हैं; केवल इन्हीं को अहेर करने, चौपाए रखने और फुटकर पशु बेचने या उन्हें किराये पर देने की आज्ञा है। भूमि को ऐसे बनैले पशुओं और पक्षियों से स्वच्छ करने के बदले में वे राजा की ओर से अन्न का वेतन पाते हैं। वे घूम कर जीवन बिताते हैं और डेरों के भीतर रहते हैं।

खण्ड ३६ इसके आगे है।

[इतना तो बनैले पशुओं के विषय में हुआ । अब हम मेगास्थिनीज की ओर लौटते हैं और जहां से छोड़ा है वहीं से फिर उठावेंगे।]

चौथी जाति, चरवाहों और अहेरियों के उपरान्त, उन लोगों से संयुक्त है जो व्यापार का काम करते हैं, वे जो बरतन बेचते हैं तथा वे जो शारीरिक परिश्रम में लगाए जाते हैं। इनमें से कोई तो कर देते हैं और राज्य के प्रति कुछ नियत सेवायें करते हैं; किन्तु कवचकार और जहाज बनानेवाले मजदूरी और अपना भोजन राजा से पाते हैं और केवल उसी के लिये वे काम करते हैं। सेना का नायक सिपाहियों को अस्त्र पहुँचाता है, और जहाज़ी बेड़े का नायक जहाज़ों को, मुसाफ़िर तथा माल दोनों उतारने के लिये, भाड़े पर देता है।

(४७) पांचवां वर्ग लड़नेवाले मनुष्यों का है, जो, जब वे कार्य्य कर सेवा में नहीं फँसे रहते अपना समय निरुद्यमता और मद्यपान में बिताते हैं। वे राजा के व्यय से रक्खे जाते हैं, और इस हेतु जब अवसर पड़ता है वे युद्धक्षेत्र में जाने को सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं, क्योंकि अपने अपने शरीर के अतिरिक्त वे और कोई निज की वस्तु साथ नहीं लेते।

(४८) छठां वर्ग निरीक्षकों का है जिनको जो कुछ हो रहा हो उसे निरीक्षण करने और राजा को गुप्त रीति से उसकी सूचना देने का भार प्रदान किया गया है। किसी को नगर निरीक्षण करने का भार सौंपा गया है और किसी को सेना का। एक तो अपने सहायकों की भांति नगर के सभासदों को संलग्न करते हैं और दूसरे डेरे के सभासदों को। अत्यन्त योग्य और विश्वासपात्र मनुष्य इन पदों पर नियुक्त किए जाते हैं।

सातवां वर्ग राजा के मन्त्रियों और कर्मचारियों का है। राज्य के बड़े से बड़े पद, न्याय की कचहरियां, और राजकाज का साधारण प्रबन्ध उनके हाथ में है। किसी को अपनी जाति के बाहर विवाह करने, एक व्यापार या व्यवसाय छोड़ कर दूसरा ग्रहण करने अथवा एक से अधिक व्यवसाय करने की आज्ञा नहीं है।

Fragment XXXIV

Strabo xv. 1 50-52,—pp 707-709.

राजकाज के प्रवन्ध के विषय में।

घोड़ों और हाथियों के व्यवहार के विषय में।

(५०) राज्य के बड़े बड़े कर्मचारियों में से किसी के सुपुर्द बाजार रहता है, किसी के नगर और किसी के सिपाही। जैसा मिश्र में होता है उसी तरह कुछ लोग नदियों का निरीक्षण करते हैं, भूमि को नापते हैं और उन मुहानों की देखभाल करते हैं जिनसे हो कर प्रधान नहरों का पानी उनकी शाखाओं में जाता है जिसमें हर एक को बराबर पानी मिले। इन्हीं लोगों के सुपुर्द शिकारी लोग भी रहते हैं और इन्हीं को उनकी योग्यतानुसार उन्हें पुरस्कार या दण्ड देने का अधिकार प्राप्त रहता है। ये कर वसूल करते हैं और भूमि से सम्बन्ध रखनेवाले व्यवसायों की देखभाल करते हैं जैसे लकड़िहारे, बढ़ई लोहार और खान खोदनेवाले। ये सड़क बनाते हैं, और हर दसवीं स्टेडिया* पर रास्ते और दूरी को सूचित

---

* इससे जान पड़ता है कि दस स्टेडिया किसी हिन्दुस्तानी नाप के बराबर था जो अवश्य ही क्रोश या कोस रहा होगा। यदि स्टेडिया २०२$\frac{1}{2}$ गज़ का माना जाय तो इस हिसाब से एक कोस में २०२२$\frac{1}{2}$ गज होते हैं जो ४००० हाथ के छोटे कोस से मेल खा जाता है जो पञ्जाब में प्रचलित है और बंगाल में भी थोड़े ही पहिले, यद्यपि अब नहीं, व्यवहार में था।

करने के लिये स्तंभ उठाते हैं। जिनके सुपुर्द नगर है वे पांच पांच मनुष्यों के छ समुदायों में बंटे हैं । पहिले समुदाय के लोग कला-कौशल से सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक बातों की देखभाल करते हैं। दूसरे समुदाय के लोग विदेशियों का सत्कार करने पर रहते हैं; उनको ये निवासस्थान देते हैं और उन लोगों के द्वारा जिन्हें ये उन (विदेशियों) को सहायकों की भाँति देते हैं उनके रहन सहन पर भी दृष्टि रखते हैं । जब वे देश छोड़ के जाते हैं तो ये उन्हें मार्ग में पहुचाते हैं अथवा, उनके मरने पर उनकी सम्पत्ति को उनके सम्बन्धियों को पहुंचा देते हैं । जब वे बीमार होते हैं तब ये उनकी सेवा करते हैं और यदि मर जाते हैं तो गाड़ देते हैं । तीसरा समुदाय उन लोगों से संयुक्त है जो यह पता लगाते हैं कि कब और किस प्रकार से जन्म और मृत्यु उपस्थित हुई; न कि केवल कर लगाने के अभिप्राय से वरन् इस हेतु से भी कि जिसमें उच्च और नीच दोनों के बीच जन्म और मृत्यु राज्य की सूचना से न बचने पावे। चौथा वर्ग व्यवसाय और व्यापार का निरीक्षण करता है । इस वर्ग के लोग नाप और तौल की निगरानी रखते हैं और देखते रहते हैं कि ऋतु की उपज साधारण सूचना द्वारा बेची जाय । किसी मनुष्य को एक से अधिक प्रकार की सामग्री बेचने का अधिकार नहीं है जब तक कि वह दूना कर न दे। पांचवाँ वर्ग बनी हुई वस्तुओं की जांच करता है जिनको लोग साधारण विज्ञापन द्वारा बेंचते हैं । जो वस्तु नई होती है वह उससे अलग बेची जाती है जो पुरानी होती है और इन दोनों को एक साथ मिला देने पर जुरमाना होता है। छठां और अन्तिम वर्ग उन लोगों का है जो बेची हुई वस्तुओं के मूल्य का दशमांश वसूल करते हैं। इस कर के प्रदान में धोखा देने का दण्ड मृत्यु द्वारा दिया जाता है।

यही कर्त्तव्य हैं जिनका ये समुदाय पृथक पृथक सम्पादन करते हैं। इनके मिले जुले रूप में इनके सुपुर्द इनके विशेष विभाग भी रहते हैं तथा सर्वसाधारण के हितसाधक कार्य्य भी जैसे सरकारी इमारतों की मरम्मत कराना, मूल्यों का निर्धारित करना, बाज़ारों, बन्दरगाहों और मन्दिरों की निगरानी । नगर के दण्डा-ध्यक्षों के अनन्तर एक तीसरा शासक समाज है जो सेना सम्बन्धी कार्य्यों को चलाता है। प्रत्येक पांच पांच मनुष्यों के दल में भी छ

विभाग हैं । एक विभाग तो जहाज़ी बेड़े के नायक के साथ योग देने के हेतु नियत किया जाता है दूसरा उन सांड़ के छकड़ों के निरीक्षक के साथ जो युद्ध के इंजिन, सिपाहियों की भोजनसामग्री, चौपायों का चारा, तथा और दूसरी सैनिक सामग्रियों के ढोने के काम में आते हैं। ये सेवक पहुंचाते हैं जो ढोल बजाते हैं और दूसरे जो झांझ लेकर चलते हैं; घोड़ों के लिये साईस भी, तथा शिल्पकार और उनके सहायक भी (यही देते हैं)। झांझ के शब्द पर ये घसिहारों को घास लाने के लिये भेजते हैं; और पुरस्कार और दण्ड के नियम के द्वारा ये इस काम को करीने और हिफ़ाज़त के साथ करवा लेते हैं। तीसरे वर्ग के सुपुर्द पैदल सिपाही, चौथे के घोड़े, पांचवें के युद्ध के रथ, और छठें के हाथी रहते हैं। घोड़ों और हाथियों के लिये सरकारी अस्तबल हैं तथा हथिआरों के लिये सरकारी मेगज़ीन भी हैं, क्योंकि सिपाही को अपने शस्त्र को मेगज़ीन में और घोड़े को अस्तबल में लौटाना पड़ता है। वे हाथियों को बिना लगाम लगाए काम में लाते हैं। चढ़ाई पर रथ बैलों द्वारा खींचे जाते हैं, पर घोड़े साथ साथ बागडोर के सहारे चलाए जाते हैं जिसमें उनकी टांगें चुटीली न हो जांय और वे गरमा न उठें तथा रथ खींचने से उनका उत्साह ढीला न पड़ जाय। सारथी के अतिरिक्त दो योद्धा रहते हैं जो रथ में उसके इधर उधर बैठते हैं। युद्ध के हाथी चार आदमी लेकर चलते हैं—तीन तो वे जो तीर चलाते हैं, और एक फ़ीलवान।

खण्ड ३५ वा।

Ælian, Hist, Anim XIII–10.

घोड़ों और हाथियों के विषय में।

जो यह कहा जाता है कि एक भारतवासी घोड़े के सामने कूद कर उसकी गति रोक सकता है और उसको पीछे हटा सकता है, यह सब भारतवासियों के विषय में सत्य नहीं है वरन् केवल उन्हीं के विषय में जो लड़कपन से घोड़े फेरना सिखाए जाते हैं,

क्यों कि अपने घोड़ों को लगाम से वश में करने और उनको सधी हुई क़दम के साथ और एक सीध में चलाने की रीति उनके बीच है। पर न तो वे उनकी जीभ कांटेदार जाबों से चुटीली करते हैं और न उनके तालू को पीड़ित करते हैं। व्यवसायी शिक्षक उनको एक चक्कर में चारों ओर दौड़ा कर निकालते हैं विशेष कर के जब वे अड़ीले होते हैं। ऐसे लोगों को जो इस काम को उठाते हैं बलिष्ट भुजा तथा घोड़ों में पूरी जानकारी की आवश्यकता रहती है। अत्यंत निपुण लोग अपने गुण की परीक्षा एक रथ को चक्कर में बार बार दौड़ा कर करते हैं; और सचमुच चार चार उद्दण्ड घोड़ों के समूह को, जब कि वे एक वृत्त में वेग के साथ घूम रहे हैं, वश में रखना कोई सहज खेल नहीं है। रथ पर दो आदमी रहते हैं जो सारथी के इधर उधर बैठते हैं। युद्ध का हाथी, या तो उसमें जो मण्डप कहलाता है वा सच पूछिए तो अपनी नङ्गी पीठ पर तीन योद्धा ले कर चलता है जिनमें से दो तो बग़ल से तीर छोड़ते हैं और एक पीछे से छोड़ता है। एक चौथा आदमी भी रहता है जो अपने हाथ में अंकुश लिये रहता है जिससे वह उस पशु को ठीक उसी रीति से चलाता है जैसे किसी जहाज़ के कप्तान और मांझी पतवार से उसे चलाते हैं।

---

३६ वां खण्ड।

Strabo xv. I. 41-43,—pp.704-705

हाथियों के विषय में।

साधारण आदमी को घोड़ा और हाथी रखने की आज्ञा नहीं है। ये पशु राजा की मुख्य सम्पत्ति समझे जाते हैं, और उनकी देख भाल के लिये मनुष्य नियुक्त किए जाते हैं। हाथी के पकड़ने की रीति यह है। भूमि के एक खुले खण्ड में विस्तार में लगभग पांच या छ स्टेडिया की एक गहरी खाई खोदी जाती है,और इस पर एक बहुत तङ्ग पुल रक्खा जाता है जिस पर से घेरे के भीतर जाने का रास्ता रहता है। इस घेरे के भीतर तीन या चार सबसे अच्छी प्रकार

सिखाई हुई हथिनियां लाई जाती हैं । मनुष्य लोग स्वयं छिपे हुए झोपड़ों में ताक में पड़े रहते हैं । वनैले हाथी दिन के समय इस फन्दे के निकट नहीं आते, परन्तु रात को वे इसके भीतर एक एक कर के जाते हैं । जब सब द्वार से हो कर निकल जाते हैं तब लोग धीरे से उसे बन्द कर देते हैं; तब, सब से बलवान लड़नेवाले हाथियों को उसके भीतर ले जाकर जङ्गली हाथियों से लड़ाते हैं, जिनको कि वे भूख से भी अशक्त कर देते हैं । जब वनैले हाथी श्रम से थक जाते हैं, तब फीलवानों में सब से साहसी चुपके से उतर आते हैं, और प्रत्येक मनुष्य अपने अपने हाथी के नीचे खिसक जाता है और इस आसन से वनैले हाथी के पेट के नीचे निसक जाता है और उसके पैरों को बांध देता है । जब यह हो चुकता है तब वे पालतू हाथियों को उन्हें मारने के लिये उभाड़ते हैं जिन के पैर बंधे रहते हैं, यहां तक कि वे पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं । तब वे जंगली और घरेलू दोनों को एक साथ गरदन से गरदन मिला कर बैल के गीले चमड़े के पट्टों से बांध देते हैं । जिसमें वे चढ़ने के लिये यत्न करते समय हिलें न वे उनकी गरदन के चारों ओर घाव कर देते हैं और तब घावों में चमड़े के पट्टे डाल देते हैं, इससे पीड़ा उन्हें बेड़ियों को सहन करने और चुपचाप पड़े रहने को बाध्य करती है । पकड़ी हुई संख्या में से वे ऐसों को निकाल देते हैं जो सेवा के लिये बहुत बुड्ढे अथवा बहुत बच्चे होते हैं, और शेष को वे बाड़ों में ले आते हैं । यहां वे उनका पैर एक दूसरे से बांध देते हैं और गरदन एक दृढ़तापूर्व्वक गड़े हुए खम्भे से लगा कर जकड़ देते हैं, और उन्हें भूख से पालतू करते हैं । इसके उपरान्त वे हरे हरे नरकटों और घास से फिर (उनके शरीर में) बल लाते हैं । फिर वे उन्हें आज्ञानुवर्ती होना सिखाते हैं जिसको वे उन्हें सन्तुष्ट कर के करते हैं, कोई दमदिलासे के शब्दों से और कोई गीतों और *ढोल के बाजे से । बहुत कम उनमें से ऐसे निकलते हैं जिनका* पालना कठिन हो, क्योंकि वे स्वभावतः इतने सीधे और शान्त होते हैं कि वे बुद्धिसम्पन्न जीवों के निकट तक पहुंचते हैं । कोई कोई उनमें से अपने फीलवान को जब वह लड़ाई में गिर जाता है ऊपर उठा लेते हैं और कुशलपूर्व्वक रणक्षेत्र से निकाल ले जाते हैं । कोई, जब उनके स्वामियों ने उनके अगले पैरों के बीच में शरण

की हैं, उनकी रक्षा के हेतु लड़े हैं और उन्होंने उनके प्राण बचाए हैं। यदि क्रोध के आवेग में वे उस मनुष्य को जो उन्हें चारा देता है अथवा उसको जो उन्हें शिक्षा देता है मार डालते हैं, तो वे उसकी हानि के लिये इतना पछताते हैं कि भोजन करना छोड़ देते हैं और कभी कभी भूख से मर जाते हैं।

वे घोड़ों की नाईं प्रसंग करते हैं, और मादा अपना बच्चा बसन्त काल में देती है। यह नर हाथी के लिये ऐसी ऋतु है, जब वह मद में रहता है और भयानक हो जाता है। उस समय वह कनपटियों के पास एक छिद्र में से एक चरबीला पदार्थ फेंकता है। यह मादा के लिये भी ऐसी ऋतु होती है जब उसका सम्बन्धी मार्ग खुल जाता है। वे सोलह अथवा अठारह महीने तक बच्चा लिए रहती हैं। मादा अपने बच्चों को छ वर्ष तक दूध पिलाती है। बहुतेरे तो इतने दिन जीते हैं जितने कि मनुष्य जो अत्यंत दीर्घायु को पहुंचते हैं, और कोई कोई २०० वर्ष से ऊपर जीते हैं। इन्हें बहुत से रोगों का भय रहता है और ये जल्दी चंगे नहीं होते। नेत्रों के रोगों के लिये गाय के दूध से उन्हें धोना दवा है। उनके और दूसरे रोगों के लिये उन्हें काली मदिरा के घूंट दिए जाते हैं। उनके घावों को अच्छा करने के लिये उन्हें मक्खन खिलाया जाता है क्यों कि यह लोहा बाहर खींच लेता है। उनके घाव सूअर के मांस से सेंके जाते हैं।

खण्ड ३७ वां।

Arr. Ind. Ch. 13–14

(३२ वां खण्ड इसके पहिले आता है)

(एरियन की इण्डिका का अनुवाद देखो)

[खण्ड—३७ ख]

Ælian, Hist, Anim. XII 44.

हाथियों के विषय में ।

भारतवर्ष में यदि कोई हाथी पूरी बाढ़ पर पकड़ा जाता है तो उसका पालना कठिन होता है; वह स्वतन्त्रता की इच्छा से रुधिर का प्यासा हो जाता है। यदि वह सीकड़ों में बांध दिया जाता है तो यह उसे और भी क्रुद्ध करता है, और वह स्वामी के वस में नहीं आता है। पर, भारतवासी लोग उसे भोजन से फुसलाते हैं और बहुत सी ऐसी वस्तुओं से उसे शान्त करते हैं जिनसे उसे रुचि रहती है; उनका उद्देश्य उसका पेट भरना और उसके स्वभाव को कोमल करना रहता है। पर वह अभी तक उनसे कुपित रहता है और उन पर कुछ ध्यान नहीं देता। तब फिर वे किस युक्ति का सहारा लेते हैं ? वे उसके पास अपने देशी रागों को गाते हैं और उसे सर्वसाधारण में प्रचलित एक यंत्र की ध्वनि से प्रसन्न करते हैं जिसमें चार तार लगे रहते हैं और जो (Skinda-psos) स्किण्डप्सस कहलाता है। पशु अब अपने कान उठाता है और मनोरञ्जक आलाप के वश में हो जाता है और उसका क्रोध धीमा पड़ जाता है। तब, यद्यपि उसका दबा हुआ क्रोध कभी कभी भड़क उठता है, वह धीरे धीरे अपनी दृष्टि भोजन की ओर फेरने लगता है। तब वह अपने बन्धनों से मुक्त कर दिया जाता है परन्तु भागने की चेष्टा, गान से मोहित होने के कारण, नहीं करता। यहां तक कि वह खाना चाह से खाने लगता है, और एक विशद अतिथि की भांति भोजन की चौकी के पास खड़ा रह कर गान के प्रेम से जाने की इच्छा नहीं करता।

खण्ड ३८ वां।

Ælian, Hist, Anim XIII, 7.

हाथियों के रोग के विषय में।

भारतवासी उन हाथियों के घाव को जिन्हें वे पकड़ते हैं निम्नलिखित रीति से अच्छा करते हैं—वे उनकी उसी रीति से चिकित्सा करते हैं जिससे, जैसा कि सज्जन वृद्ध होमर (Homer)

कहता है, पेट्रोक्लस (Patroklos) ने यूरिपाइलस (Eurypylos) घावों की चिकित्सा की थी,—वे उन्हें मर्द उष्ण (शीरगर्म) ज से सेंकते हैं।* इसके उपरान्त वे उन्हें मक्खन से मलते हैं, औ यदि वे गहिरे होते हैं तो वे गरम, पर रुधिर लगा हुआ सूअर मांस लगा कर और भर कर सूजन को कम कर देते हैं। वे.... को गाय के दूध से अच्छा करते हैं, जो कि प्रथम आंख को सेंकने लिये काम में लाया जाता है और फिर उसमें डाला जाता है। प अपनी पलकों को खोल देते हैं, और यह देख कर कि वे अच्छी तर सकते हैं, प्रसन्न होते हैं और गुण को मनुष्यों की भांति समझ ताक हैं। जैसे जैसे उनका अन्धापन घटता जाता है उसी हिसाब स उनकी प्रसन्नता बढ़ती जाती है, और यह एक चिन्ह है कि बीमार अच्छी हो गई। दूसरे रोगों की औषधि जो उन्हें होते हैं काली मदिरा है; और यदि यह अनुपान भी आरोग्यता लाने में निष्फल होता है तो दूसरी कोई वस्तु उन्हें नहीं बचा सकती।

खण्ड ३९ वां।

Strabo. xv. I 44—p. 706.

† सोना खोदनेवाली चीटियों के विषय में।

---

* देखो इलियड् अ० ११; ८४९।

† देखो Ind. Ant Vol IV. pp 225 जहां पर दृढ़ विवाद यह प्रमाणित करने के लिये उपस्थित किए गए हैं कि "सोना खोदने-वाली चीटियां आदि में न तो यथार्थ में चीटियां थीं जैसा कि प्राचीन लोग समझते थे, और न दूसरे कोई बड़े जानवर थे जो अपने आकार और स्वभाव के कारण भ्रम से चींटी समझी गए जैसा कि बहुत से विद्वानों ने अनुमान किया है, परन्तु वे तिब्बती खान खोदनेवाले थे जिनका रहन सहन और पहिरावा अत्यंत प्राचीन काल में वैसा ही था जैसा कि [illegible] है।

मेगास्थिनीज़ इन चींटियों का निम्नलिखित विवरण देता है भारतवासियों की एक बड़ी जाति * दरदई Dardai के बीच जो पूर्वीय सीमा के पहाड़ों पर बसती है एक ऊँचा † सेटो लगभग ३००० स्टेडिया के घेरे में है। सतह के नीचे सोने की खानें हैं, और यहीं अतएव वे चींटियां पाई जाती हैं जो उस धातु के लिये खोदती हैं। वे डील में जंगली लोमड़ियों से कम नहीं होतीं। वे आश्चर्य्यजनक वेग के साथ दौड़ती हैं और अहेर की प्राप्ति पर निर्वाह करती हैं। उनके खोदने का समय जाड़ा है ‡। खानों के मुँह पर वे, जैसा कि छछूँदर करते हैं, मिट्टी का ढेर फेंकती हैं। स्वर्णधूलि को थोड़ा उबालना पड़ता है। पड़ोस के लोग चुप चाप बोझ ढोनेवाले पशुओं के साथ आकर इसको ले जाते हैं। यदि वे खुले मैदान आवें तो चींटियां उन पर आक्रमण करें और यदि वे भागें तो उनका पीछा करें, और उन्हें, तथा उनके बैलों दोनों को मार डालें। इससे उनकी दृष्टि बचा कर इस डकैती को पूरा करने के लिये वे कई भिन्न भिन्न स्थलों पर जंगली पशुओं के मांस के टुकड़े डाल देते हैं, और जब चींटियां इस युक्ति से छितरा जाती हैं तो वे स्वर्णधूलि

* ये प्लिनी के Dardæ, टालमी के दरद्रई Daradrai और संस्कृत साहित्य के दरदस हैं। "दार्दम लोग मिटी हुई जाति नहीं हैं। आधुनिक भ्रमणकारों के वृत्तान्तों के अनुसार उनमें कई जंगली और लुटेरे दल सयुक्त हैं जो काश्मीर की उत्तर-पश्चिमी सीमा के पर्वतों पर सिन्धु नदी के तट पर बसते हैं—Ind Ant

† चोजोटोल का टेब्ललैंड—Journal Royal Geog Soc. Vol xxxix pp 149—Es Ind Ant

‡ "थोकजालन के खान खोदनेवाले शीत के रहते भी जाड़े ही में काम करना पसन्द करते हैं, और उनके डेरों की संख्या जो गरमी में तीन सौ रहती है जाड़े में लगभग छ सौ के पहुँच जाती है। वे जाड़ा इस हेतु पसन्द करते हैं कि जमी हुई मिट्टी अच्छी तरह लगी रहती है और गिर कर उन्हें बहुत कष्ट नहीं देती।"

को उठा ले जाते हैं। इस को ये जो व्यापारी मिला उसी के हाथ जब कि यह कच्ची ही अवस्था में रहती है बेच देते हैं क्यों कि धातुओं को गलाने की विद्या उन्हें अज्ञात है।

खण्ड ४० वाँ।

Arr. Ind. xv; 5-7.

(एरियन की इंडिका का अनुवाद देखो)

[खण्ड ४० (ख)]

Dio Chrysost or. 35,-p 436, Morell.

चींटियों के विषय में जो सुवर्ण के लिये खोदतीहैं।

(मिलाओ खण्ड ३४ और ४०)

ये सोना चींटियों से पाते हैं। ये जीव लोमड़ियों से बड़े होते हैं, परन्तु और बातों में हमारे देश की चींटियों के समान होते हैं। वे दूसरी चींटियों की तरह भूमि में खोदती हैं। ढर जो वे ऊपर फेंकती हैं। सारे संसार में सब से शुद्ध और कान्तिमय सुवर्ण का रहना है, ये टीले स्वर्णधूलि की छोटी छोटी पहाड़ियों की नाईं एक दूसरे के पास पास विधानयुक्त क्रम के साथ लगाए जाते हैं जिससे सारा मैदान दीप्तिमान हो जाता है। इसलिये सूर्य की ओर ताकना कठिन रहता है, और बहुतों ने जिन्होंने ऐसा करने का यत्न किया है अपनी नेत्रज्योति नष्ट कर दी है। लोग जो इन चींटियों के पड़ोसी हैं इन ढेरों को लूटने के अभिप्राय से छकड़ों पर चढ़के जिनमें वे अपने सब से तेज घोड़े को जोते रहते हैं मध्यवर्त्ती रेगिस्तान को पार करते हैं जो बड़े विस्तार का नहीं है। वे दोपहर को पहुँचते हैं जिस समय चींटियां भूगर्भ में गई रहती हैं, और चटपट लूट का लेकर पूर्ण वेग के साथ भागते हैं। चींटियां जो कुछ हुआ उसका समाचार पाकर

भागनेवालों का पीछा करती है और उन्हें पकड़ कर जब तक जीतती या मरती नहीं तब तक उनसे लड़ती हैं, क्योंकि समस्त जानवरों से वे अधिक साहसी होती हैं। इससे यह जान पड़ता है कि वे सुवर्ण के मूल्य को समझती हैं और उससे जुदा होने की अपेक्षा अपना प्राण न्योछावर कर देना चाहती हैं।

खण्ड ४१ वां।

Strabo XV 1, 58 60—pp. 7117-14

भारतीय दार्शनिकों के विषय में।

(खण्ड २९ इसके पहिले है)

(५८) दार्शनिकों की चरचा करते हुए वह (मेगास्थिनीज़) कहता है कि उनमें से ऐसे लोग जो पर्वतों पर रहते हैं डायोनिसस (Dionysos) के पूजक होते हैं और इस के प्रमाण की भाँति कि वह उनके बीच आया था वे जंगली अंगूर, जो केवल उन्हीं के देश में होता है, और तरुरोहिणी, और नारल (laurel) और मेंहदी (myrtle) और शमशाद (box tree) तथा और दूसरे सदाबहार के पेड़ दिखाते हैं जिनमें से एक भी, केवल कहीं कहीं उद्यानों में छोड़ जिनकी रक्षा के हेतु बड़े ध्यान की आवश्यकता होती है, इफ़रात के आगे नहीं पाए जाते। वे कुछ रीतियों का पालन करते हैं जो बक्चनेलियन् (Bacchanalian) हैं। जैसे वे मलमल पहिनते हैं, पगड़ी देते हैं, सुगन्धित द्रव्यों का व्यवहार करते हैं और चमकीले रंगो में रंगे हुए पहिरावों को धारण करते हैं, और उनके राजा जब सर्वसाधारण के बीच निकलते हैं उनके पीछे ढोल और झांझ बजते हैं। किन्तु वे दार्शनिक जो मैदानों में रहते हैं हेराक्लीज़ (Heraklês) की पूजा करते हैं। [यह गप्प है और बहुतेरे ग्रन्थकारों ने इसका खण्डन किया है विशेष कर उसका जो अंगूर और मद्य के विषय में कहा गया है। क्योंकि आरमेनिया का

अधिक भाग, और पारस और कारमेनिया के आगे समस्त मेसोपोटामिया (Mesopotamia) और मिडिया (Media) इफ़रात के आगे पड़ता है और इन प्रत्येक देशों के अधिकतर भागों में उत्तम अंगूर उत्पन्न होते हैं और उनसे उत्तम मद्य निकाला जाता है।]

(५९) मेगास्थिनीज़ दार्शनिकों का एक भिन्न विभाग यह कह कर करता है कि वे दो प्रकार के होते हैं—जिनमें से एक को वह ब्राचमनीज़ (Brachmanès) कहता है और दूसरे को *सरमनीज़ (Sarmanès) ब्राचमनीज़ की प्रतिष्ठा सब से अधिक होती है क्योंकि अपनी सम्मतियों में वे अधिक युक्तिपूर्ण होते हैं। गर्भस्थान में आने के समय से ही वे विद्वान मनुष्यों की निगरानी में रहते हैं, जो माता के पास उसके और उसके बच्चे के कल्याण के हेतु मंत्र प्रयोग करने के मिस जाते हैं, परन्तु वास्तव में उसे सुन्दर शिक्षा और उपदेश देते हैं। स्त्रियां जो अत्यन्त चाह से सुनती हैं अपने लड़कों के विषय बड़ी भाग्यवती समझी जाती हैं। जन्म के अनन्तर लड़के एक के उपरान्त दूसरे मनुष्य के आधीन रहते हैं और जैसे जैसे वे अवस्था में बढ़ते जाते हैं प्रत्येक उत्तराधिकारी स्वामी अपने पूर्वाधिकारी से अधिक दक्ष होता है। दार्शनिकों का निवासस्थान नगर के सामने कुञ्ज में एक स्वल्पाकार घेरे के भीतर होता है। वे सादी चाल से रहते हैं, और तृण और चर्म (मृग) के बिछौनों पर सोते हैं; वे मांसाहार और विषय सुख से बच रहते हैं और अपना समय गम्भीर वार्त्ताओं के श्रवण में तथा उन्हें अपनी विद्या दान करने में बिताते हैं जो सुनना चाहते हैं। श्रोता को बोलने की, खाँसने तक की, थूकने की कौन कहे, आज्ञा नहीं है और यदि कोई इस प्रकार का अपराध करता है वह उसी दिन मण्डली से ऐसा मनुष्य

* यह प्रधान प्रश्न है कि ये सरमनीज़ कौन थे, कुछ लोग तो उन्हें बौद्ध समझते हैं और कुछ लोग इसका प्रतिवाद करते हैं। दोनों ओर से गम्भीर गम्भीर विवाद उपस्थित किए गए हैं; लेकिन उनकी सम्मति सत्य की ओर अधिक प्रवृत्त जान पड़ती है जो कहते हैं कि वे बौद्ध थे। — Schwanbeck.

समझ कर निकाल दिया जाता है जिसमें इन्द्रियावरोध का अभाव है। इस प्रकार से सैंतीस वर्ष रह कर प्रत्येक प्राणी अपनो सम्पत्ति पर लौट आता है जहां पर वह अपने शेष दिनों तक सुख और रक्षापूर्वक रहता है †। तब वे उत्तम मलमल धारण करते हैं और अपनी अंगुलियों और अपने कानों में कुछ सोने के गहने भी पहिनते हैं। वे मांस खाते हैं पर परिश्रम में लगनेवाले पशुओं का नहीं। वे गरम तथा मसाल बघारे हुए भोजन से बचते हैं। वे जितनी स्त्रियां चाहते हैं उतनी बहुत सी सन्तति होने के अभिप्राय से ब्याहते हैं; क्यों कि कई स्त्रियां रखने में बड़े लाभ होते हैं, और चूंकि उनके पास दास (गुलाम) नहीं होते इससे उन्हें अपने आस पास आवश्यकता को पूरा करने के लिये लड़कों के रखने की अधिक आवश्यकता होती है।

ब्राचमनीज लोग दर्शन के ज्ञान को स्त्रियों से नहीं जनाते कि कहीं यदि व दुश्चरित्रा हो जाय तो निषेध किए गए रहस्यों में से किसी को खोल न दें अथवा यदि वे कहीं उत्तम दार्शनिक हो जांय तो उन्हें छोड़ न दें। क्यों कि कोई व्यक्ति जो सुख और दुःख तथा जीवन और मरण का तिरस्कार करता है दूसरे के आधीन नहीं रहना चाहता है, किन्तु यह सत्पुरुष और सुशीला स्त्री दोनों का लक्षण है।

मृत्यु प्रायः उनकी वार्त्ता का विषय रहता है। वे इस जीवन को, मानों, वह काल समझते हैं जब बच्चा गर्भ के भीतर परिपूर्ण

---

† यह भ्रम (यूनानी ग्रन्थकर्ताओं का) ब्राह्मण के जीवन के चारों विभागों की अज्ञानता से उत्पन्न हुआ है। जैसे वे ऐसे मनुष्यों की बात कहते हैं जिन्होंने बहुत वर्षों तक दार्शनिक रह कर विवाह किया है और साधारण जीवन में आए हैं—एलफिस्टन का इतिहास पृष्ठ २३६ जहा पर यह भी कहा है कि ग्रन्थकारों ने भ्रम वश उस काल को बढा कर लिखा है जिसमें छात्रगण अपने शिक्षकों की वार्त्ता चुपचाप भक्ति के साथ सुनते हैं। वे हर अवस्था में सैंतीस वर्ष कहते हैं जो कि सब से अधिक काल है जिसे मनु ने लिखा है।

होता है; और मृत्यु को दर्शन के अनुगामियों के लिये एक यथार्थ और आनन्दमय जीवन के बीच जन्म समझते हैं। इस निमित्त ये मृत्यु की तैयारी की भांति बड़ी शिक्षा प्राप्त करते हैं। जो कुछ मनुष्य पर पड़ता है उसको वे भला वा बुरा नहीं समझते; अन्यथा विचार करना स्वप्नवत् भ्रम है, नहीं तो क्यों उन्हीं वस्तुओं से किसी किसी को शोक होता है और किसी को आनन्द, और कैसे वही वस्तु उन्हीं प्राणियों को भिन्न भिन्न अवसरों पर इन परस्पर विरोधी भावनाओं से पूर्ण करती है?

वही ग्रन्थकार कहता है कि भौतिक रहस्य के विषय में उनके विचार बड़े कच्चे हैं, क्यों कि वे विवेचनाओं की अपेक्षा अपने कर्मों में अधिक भले होते हैं; क्यों कि उनका विश्वास अधिकतर कहानियों पर अवलम्बित रहता है; तिस पर भी कई बातों में उनकी सम्मतियां यूनानियों से मेल खाती हैं, क्यों कि उन्हीं की नाईं वे भी कहते हैं कि जगत का आदि था और वह नश्वर है और आकार में गोल है, और ईश्वर जिसने उसको बनाया और जो उस पर शासन करता है उसके समस्त अंशों में व्याप्त है। वे मानते हैं कि कई आदि तत्त्व हैं जो ब्रह्माण्ड में परिचलित होते हैं और जल ही वह तत्त्व है जो जगत के बनाने में व्यवहृत हुआ था। चार तत्त्वों के अतिरिक्त एक पांचवीं सामग्री (आकाश) भी है जिससे नभ-मण्डल और तारे उत्पन्न हुए। पृथ्वी ब्रह्माण्ड के बीच में रक्खी गई है। उत्पत्तिपरम्परा और आत्मा के तत्त्व के विषय में तथा और दूसरी बातों में वे यूनानियों ही के समान विचार प्रगट करते हैं। वे अपने अमरत्त्व और आगामि न्याय विषयक सिद्धान्तों तथा और ऐसी ही बातों को प्लेटो (Plato) के ढंग पर रूपकों में लपेटते हैं। ऐसे ही उसके कथन ब्राचमनीज़ के विषय में हैं।

(६०) सरमनीज, जिनकी सब से अधिक प्रतिष्ठा होती है वे (Hylobioi) हाइलोब्योई कहलाते हैं। वे जंगलों में रहते हैं जहां पर वे पेड़ की पत्तियों और जंगली फलों पर निर्वाह करते हैं, और वृक्षों की छाल के बने हुए पहिरावे धारण करते हैं। वे स्त्रीप्रसंग और मद्य से बचते हैं। वे राजाओं से बात चीत रखते हैं जो वस्तुओं के कारण के विषय में दूतों द्वारा उन

से परामर्श लेते हैं, और जो उन्हीं के द्वारा देवता की विनती और पूजा करते हैं। हाइलोब्योई में प्रतिष्ठा में नीचे वैद्य लोग हैं, क्योंकि वे मनुष्य के स्वभाव के अध्ययन में लगे रहते हैं। चाल ढाल में वे बड़े सीधे होते हैं, किन्तु खेतों में नहीं रहते। उनका भोजन चावल और जौ है जिसको वे सदैव कहने मात्र ही से पा सकते हैं, अथवा उनसे पाते हैं जो उन्हें अपने घरों में अतिथि की भांति निमंत्रित करते हैं। अपने औषधिशास्त्र के ज्ञान के कारण वे विवाहों को फलप्रद बना सकते हैं और होनेवाली सन्तति का वर्ग (Sex) निर्धारित कर सकते हैं। वे औषधि की अपेक्षा नियमित आहार ही से आरोग्य करते हैं। औषधियों में सब से अधिक श्रद्धा मरहम और पट्टी पर है। और मद्य को वे गुण में हानिकारक समझते हैं। इस वर्ग के लोग और दूसरे वर्ग के लोग धैर्य का अभ्यास शारीरिक परिश्रम कर के और कष्ट सहन कर के करते हैं। इससे वे समस्त दिन अचल भाव से एक ही नियत आसन पर जमे रहते हैं *।

इनके अतिरिक्त भविष्यवक्ता और जादूगर लोग तथा मृतक सम्बन्धी क्रियाओं और रीतियों के अधिष्ठाता लोग होते हैं जो गावों और नगरों में भीख मांगते फिरते हैं।

इनमें से ऐसे भी जो उत्कृष्ट संस्कार और मार्जना के होते हैं, हेडीज़ (Hadês) के विषय में ऐसी ऐसी निर्मूल बातों का प्रचार करते हैं जिनको वे जीवन की पवित्रता और शुद्धता के लिये उपयुक्त समझते हैं। उनमें से किसी के साथ साथ स्त्रियां भी दर्शन का अनुगमन करती हैं, किन्तु वे प्रसंग से बची रहती हैं।

---

* निस्सन्देह यह विचारने योग्य बात है कि बुद्ध का मत यूनानी ग्रन्थकारों द्वारा स्पष्ट रूप से लिखित नहीं किया गया यद्यपि यह सिकन्दर से दो शताब्दी पहिले से था। इसका एक यही कारण है कि उसके अनुगामियों का रूप और उसकी चाल ढाल इतनी विलक्षण न थी कि जिससे कोई विदेशी उन्हें देखकर जनसमूह से उन्हें पृथक निश्चित करे।

खण्ड ४२ वां।

Clem. Alex. Strom 1. p. 3050.

यहूदी जाति इन सब से कहीं अधिक प्राचीन है और उनका दर्शन, जो लिपिबद्ध हुआ है, यूनानियों के दर्शन से पहिले का है, पैथागोरियन फ़िलो (Philo, the Pythagorean) ने कई प्रमाणों से दिखलाया है, ऐसे ही आरिस्टोब्युलस पेरिपेटिटिक (Aristoboulos, the Peripatetic) तथा और दूसरों ने भी जिनका नाम गिना कर मुझे समय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं। इंडिका पर एक ग्रन्थ का कर्ता मेगास्थिनीज़, जो सिल्यूकस निकेटर के साथ रहता था, इस विषय पर अत्यत ही स्पष्ट रूप से लिखता है, और उसके वाक्य ये हैं—" जो कुछ प्राचीनों द्वारा प्रकृति के सम्बन्ध में कहा गया है वह यूनान के बाहर के दार्शनिकों द्वारा भी निरूपित किया गया है, एक ओर तो हिन्दुस्तान में ब्राचमनीज़ द्वारा, दूसरी ओर सीरिया में उन लोगों द्वारा जो यहूदी (Jews) कहलाते हैं।

खण्ड ४२ (ख)।

Euseb Prœp. Ev. IX. 6,-pp. 410 C. D.
Ex Clem. Ælex.

फिर इस के अतिरिक्त, आगे चल कर वह इस प्रकार लिखता है:—
" मेगास्थिनीज़, ग्रन्थकार जो सिल्यूकस निकेटर के साथ रहता था, इस विषय पर अत्यन्त स्पष्ट रूप से और इस अभिप्राय से लिखता है ' जो कुछ प्राचीनों द्वारा......इत्यादि'।"

खण्ड ४२ (ग)।

Cyrill, Contra julian IV. (O pp. Ed. paris 1 638 T. VI. p. 134 Al. Ex Clem Alex. *

---

* इस खण्ड में यद्यपि सीरिल (Cyril) क्लिमेंस (Clemens) का अनुकरण करता है, वह भ्रम से मेगास्थिनीज़ के विवरण को आरिस्टाब्युलस का बतलाता है जिसकी क्लिमेंस केवल प्रशंसा करता है— Schwanbeck p 50.

आरिस्टोब्युलस पेरिपेटेटिक (Aristoboulos the Peripatetic) कहीं पर इस प्रकार लिखता है:—" जो कुछ प्राचीनों इत्यादि "।

खण्ड ४३ ।

Clem. Alex Strom 1. p. 305. A. B.

भारतवर्ष के दार्शनिकों के विषय में ।

[तब दर्शन अपने समस्त कल्याणकारी मनुष्य के लागों के साथ, दीर्घ काल से बर्बरों में प्रचालित था जहाँ से इसने अपना प्रकाश जेंटाइल्स (Gentiles) में फैलाया, और अन्त में यह यूनान में घुसा। इसके आचार्य्य, मिश्रियों के पैगम्बर (भविष्यद्वक्ता), असीरियनों के चैल्डीन्स (Chaldœns), गाल (Gaul) लोगों के ड्रूइड (Druids), सरमेनियंस (Sarmanœans) जो बैक्ट्रियन तथा केल्ट (Kelt) लोगों के दार्शनिक थे, पारसियों में मगी (Magi) जिन्होंने जैसा तुम जानते हो, पहिले ही से त्राणकर्ता (ईसू मसीह) के जन्म को बतला दिया था, और जो एक तारा देखते देखते यहूदा (Judœa) की भूमि तक आ पहुँचे थे, और भारतवासियों में जिम्नोसोफ़िस्ट (Gymnosophist), तथा बर्बर जातियों के और दूसरे दार्शनिकगण]

इन भारतीय दार्शनिकों के दो सम्प्रदाय हैं—एक सरमानई (Sarmânai) कहलाता है और दूसरा ब्राचमानई (Brachmânai)। सरमानई ही के अन्तर्गत वे दार्शनिक हैं जो Hylobioi * हाइलो-

---

* V. 1 Bovia—कोलब्रूक ने अपने " जैन सम्प्रदाय पर आलोचना " (Observations on the Sect of Jains) में क्लिमेंस के इस खण्ड को इस सम्मति का खण्डन करने के निमित्त उद्धृत किया

ब्योई कहलाते हैं जो न तो नगरों में रहते हैं और न घरों में। वे वृक्षों की छाल से अपने को ढांकते हैं, और देवदार के फलों पर निर्वाह करते हैं, और जल अपने हाथों ही से मुँह तक लेजा कर पीते हैं। न वे विवाह करते हैं और न सन्तान उत्पन्न करते हैं [हमारे समय के उन साधुओं की तरह जो इन्क्राटेटाइ (Enkratêtai) कहलाते हैं।

है कि हिन्दुओं का मत और शास्त्र बुद्ध और जिन के सिद्धान्तों से अधिक नवीन है। वे कहते हैं कि "यहां मेरे अनुमान में बुद्ध के अनुगामी ब्राचमनीज़ और सारमनीज़ से स्पष्ट तथा प्रथक् किए गए हैं। सारमनीज, जिसको स्ट्रेबो ने जरमनीज़ और पारफ़िरियस (Porphyrius) ने समेनियन्स (Samanœans) कहा है भिन्न ही मत के सन्यासी हैं और वे जिन अथवा किसी दूसरे सम्प्रदाय के होंगे। ब्राचमनीज़ वही हैं जिनको कि क्लेस्ट्रेटस और हाइरोक्लीज़ (Hierokles) ने सूर्य्य का उपासक बतलाया है; और स्ट्रेबो तथा एरियन ने उन्हें जाति तथा व्यक्ति के कल्याण के निमित्त यज्ञ और बलिदान करनेवाले कहा है। वे एक प्राचीन ग्रन्थकार द्वारा स्पष्ट रीति से बुद्ध के सम्प्रदाय से प्रथक् कहे गए हैं तथा सारमनीज़ वा समेनियन्स से बहुतेरों ने उन्हें जुदा कहा है। ये कई एक प्रामाणिक ग्रन्थकारों द्वारा सूर्य्य की उपासना करनेवाले, यज्ञ और बलिप्रदान करनेवाले, तथा संसार की नित्यता को अस्वीकार करनेवाले तथा और दूसरे सिद्धान्तों को माननेवाले कहे गए हैं जो इस अनुमान के प्रतिकूल ठहरते हैं कि उनसे जिन वा बुद्ध के सम्प्रदाय से अभिप्राय है। उनकी रीतिव्यवहार और सिद्धान्त, जैसा कि इन ग्रन्थकारों द्वारा वर्णित है हिन्दुओं के विचार और कर्म्मप्रणाली के अनुसार ही है। इससे यह सिद्धान्त निकलता है कि वेदों के अनुगामी, जब यूनानी लोग सिकन्दर के साथ भारतवर्ष में आए थे, और मेगास्थिनीज़ के समय से लेकर, जिसने उन्हें ई० पू० चौथी शताब्दी में होना लिखा है, पारफिरियस के समय तक रहे।

भारतवासियों में वे दार्शनिक भी हैं जो * बौत्त (Boutta) के सिद्धान्तों का अनुकरण करते हैं जिसकी वे, अलौकिक पवित्रता के कारण देवता की भांति प्रतिष्ठा करते हैं]

खण्ड ४४

Strabo XV, 1, 68,—p 718.

कालानोस और मंडेनिस के विषय में।

पर मेगास्थिनीज कहता है कि आत्महत्या दार्शनिकों का सिद्धान्त नहीं है, वरन् वे जो इस कर्म को करते हैं विक्षिप्त समझे जाते हैं; जो स्वभावतः कड़े दिल के होते हैं वे अस्त्र धंसाके मरते हैं अथवा करारे से अपने को गिराते हैं, जो पीड़ा से भागते हैं वे अपने को डुबोते हैं, जो पीड़ा सहन करने में समर्थ होते हैं वे गला घोंट के मरते हैं और जो तीक्ष्ण स्वभाव के होते हैं वे आग में कूद पड़ते हैं। कालानोस (Kalanos) † इसी ढाँचे का आदमी था। वह अपने मनोविकारों के आधीन हो गया और सिकन्दर के चौके का दास हो गया। इसी कारण वह अपने देशवासियों द्वारा तिरस्कृत हुआ, पर मंडेनिस सराहा जाता है क्यों कि जब सिकन्दर के दूतों

---

* लिपिया में आलोब्याई (Allobioi) पाठ है।

† कालानोस टेक्सिला से मेकडोनियन सेना के साथ हो लिया और जब अन्त में अस्वस्थ हुआ तब एक चिता पर बिना क्लेश का कोई चिन्ह प्रगट किए समस्त मेकडोनियन सेना के समक्ष भस्म हो गया। प्लूटार्क के अनुसार उसका यथार्थ नाम स्फिनिज (Sphinês) था और यूनानियों के बीच उसे कालानोस का नाम इस कारण मिला कि वह आशीर्वाद देने में यूनानी वाक्य (Xaipe) के स्थान पर (Kaye) का व्यवहार करता था। जिसे प्लूटार्क यहा (Kade) कहता है वह शायद संस्कृत का " कल्याण " है। Smith's classical Dictionary.

ने उसे ज़िउस (Zeus) के पुत्र के पास चलने के लिये निमंत्रित किया और उसके स्वीकार करने पर पुरस्कार का वचन दिया और अस्वीकार करने पर दण्ड की धमकी दिखाई, तब वह नहीं गया। उसने कहा सिकन्दर ज़िउस का पुत्र नहीं है क्योंकि वह पृथ्वी के बड़े अर्द्ध भाग तक का भी स्वामी नहीं है। और अपने लिये वह ऐसे पुरुष का कोई दान नहीं चाहता जिसकी इच्छाओं को कोई वस्तु सन्तुष्ट नहीं कर सकती; और उसकी धमकियों से वह नहीं डरता; क्योंकि यदि वह जीवित रहा तो भारतवर्ष उसे पूरा भोजन पहुँचावेगा, और यदि वह मर गया तो वह अब के जराग्रस्त मांस पिण्ड से मुक्त हो जायगा, और अधिक उत्तम तथा पवित्र जीवन में प्रवेश करेगा।

सिकन्दर ने उस मनुष्य की प्रशंसा की और उसे अपनी इच्छानुसार कार्य करने दिया।

खण्ड ४५

Arr. VII ii-3-9.

(एरियन की इंडिका का अनुवाद देखो)

पुस्तक ४

खण्ड ४६

Strabo. XV.1.6-8—pp 686-688.

कि भारतवासियों पर दूसरों ने आक्रमण नहीं किए और न स्वयं इन्होंने दूसरों पर आक्रमण किया।

(मिलाओ संग्रह २३)

6—किन्तु ऐसी ऐसी चढ़ाइयों से जैसी काइरस (Kyras)* और सेमिरमिस (Semiramis)† ने की कि हम भारतवर्ष के वृत्तान्तों पर क्या यथार्थ विश्वास रख सकते हैं ? मेगास्थिनीज़ इस विचार से सहमत है और अपने पाठकों को चेताता है कि भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास पर वे कुछ भी विश्वास न रक्खें । वहां के लोगों ने, वह कहता है, न तो विदेश में चढ़ाई की और न उनके देश पर प्राचीन काल में हेराक्लीज़ और डायोनिसस तथा हमारे काल में मेकिडोनियनों को छोड़, और किसी ने आक्रमण किया और विजय प्राप्त की । पर मिश्री सिसोस्ट्रिस ‡ (Sesostris) और इथिओ-

---

* **कायरस** या सायरस—फ़ारस का बादशाह केखुसरो था । कहा जाता है कि ६०० वर्ष ईसी पूर्व इसने सिन्ध नदी के पास तक चढ़ाई की थी । ऐतिहासिक कथाओं के अनुसार उसने 'कापिश' नाम विख्यात नगर को ध्वंस किया जो कि कोफ़िस Kophês नदी के उत्तर के देश की राजधानी थी ; (Pliny VI-23); 'अस्सकेनियन' और 'अस्टकनियन' नाम की गान्धार की जातियां भी उसे कर देती थीं (Arrian Indika 1-3) । यह भी लिखा है कि "कायरस" की समस्त सेना जिड्रोशिया (आ० विलूचिस्तान) के रेगिस्तान में नष्ट हो गई (Arrian. Anad VI 24 2).

† **सेमिरमिस**—इस रानी को 'बाबिलन' वाले देवी मानने लगे थे । इसने बहुत सी सेना एकत्रित की थी । हेरोडोटस के अनुसार इस विख्यात रानी के समय की सूचना लगभग ८०० वर्ष ई० पू० मिलती है । भारतवर्ष पर इसकी चढ़ाई का वृत्तान्त, जिसे Diodorus Siculus (II-16-19) ने Ktesias की Assyriaka के आधार पर लिखा है, बिलकुल क़िस्से कहानियों से भरा है ।

‡ सिसोस्ट्रिस (जिसमें डायडोरस ने 'सिसूसिस' कहा है) साधारणतः मेनियो की उन्नीसवीं पीढ़ी का "**रैमसस** तृतीय" माना

पियाई टार्कन यूरप तक चढ़ गए थे। और नियोकोट्रोसर, जो चालिडयनस के मध्य उससे अधिक विख्यात है जितना हिराक्लीज़ यूनानियों के बीच है, अपना अस्त्र स्तम्भों *, तक ले गया, जहां तक टार्कन भी पहुँचा,और सिसोस्ट्रिस, आइबेरिया से ले कर थ्रेस (Thrace) और पान्टस (Pontos) तक घुस गया। इनके अतिरिक्त इदंथ्रिसस (Idanthrysos) स्कीदिआई था जिसने एशिया में मिश्र तक लूटपाट की † किन्तु इन बड़े विजेताओं में से एक भी भारतवर्ष तक न पहुँचा, और सेमिरमिस, जिसने उसका विजय करना विचारा था, आवश्यक तय्यारियों के होने के पूर्व ही मर गई। पारसियों ने बलयत्ते भारतवर्ष से 'हैद्रकई' ‡ को

गया है जो **सेटी** का पुत्र और इक्सोडस के फ़राऊन "मेनिफथा" (Menephtha) का पिता था। परन्तु, लेप्सियस 'द्वितीय रेमिसस' के वंशवृक्ष के अध्ययन द्वारा, जो अबिडास (मिश्र में) में पाया गया था और जो अब ब्रिटिश म्यूजियम में है,उसको 'सिसारटोसिन' या 'आसिरटेसिन' मानने पर बाध्य हुआ है जोकि बारहवीं पीढ़ी का था—Report of the Proceedings of the Second International Cogress of Orientalists—p 44

* टालमी ने इन्हें 'सिकन्दर के स्तंभ' कहा है जो अल्बेनिया और आइबेरिया के ऊपर एशियाई सरमेटिया के आरम्भ में है।

† हेराडोटस, मद्यास (Madyas) के आधिपत्य में एक स्कीदियनों (शकतातारों) की चढ़ाई का उल्लेख करता है। कदाचित् इदंथ्रिसस स्कीदियन राजाओं की उपाधि हो और स्ट्रेबो का तात्पर्य उसी आक्रमण से हो।

‡ हैद्रकई (Hydrakai) आक्सिद्रकई (Oxydrakai) भी कहलाते हैं। लेसन के अनुसार यह संस्कृत "क्षुद्रक" है। यह सिद्रकई, सिरकुसई, सबगे, तथा सिगम्ब्री आदि कई प्रकार से लिखा गया है।

वेतनिक सिपाहियों की भाँति कार्य करने के हेतु बुलाया था, किन्तु वे देश के भीतर कोई सेना नहीं लेगए थे, और जब कायरस ने मस्सजेटई (Massagetai) के विरुद्ध चढ़ाई की थी तब वे केवल उसकी सीमा ही तक पहुँचे थे।
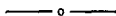
डायोनिसस और हिराक्लीज़ के विषय में ।

(७) हिराक्लीज़ तथा डायोनिसस सम्बन्धी वृत्तान्तों को मेगास्थिनीज़ और उसके साथ कुछ और ग्रन्थकार विश्वास के योग्य समझते हैं, [किन्तु अधिकांश लोग, जिनमें इरटास्थिनीज़ भी हैं, उनका यूनानियों के मध्य प्रचलित कथाओं की नाईं मिथ्या और कल्पित मानते हैं।]

(८) ऐसे ही आधारों पर वे एक विशेष जाति के लोगों को 'नइसैयंस' कहते थे और उनके नगर को 'नैसा' जिसकी नींव डायोनिसस ने दी थी, तथा उस पर्व्वत को जो उस नगर के पास खड़ा था, मेरन (Mêron)। इन नामों को प्रदान करने का कारण वे यह बतलाते थे कि वहाँ इश्कपेचा उपजता है, तथा अंगूर भी, यद्यपि उसके फल पूर्णता को नहीं पहुँचते, क्योंकि गुच्छे वर्षा की अधिकता के कारण पेड़ों से पकने के पूर्व ही गिर पड़ते हैं। आग फिर, वे आक्सिद्रकई को डायोनिसस के वंशज बतलाते थे, क्योंकि उनके देश में अंगूर उपजता था और उनकी सवारी बड़ी धूमधाम से निकलती थी और उनके राजा लड़ाई पर जाते हुए तथा और दूसरे अवसरों पर बैकचिक् (Bacchic) चाल से निकलते थे, साथ साथ ढोल बजते चलते थे, और वे चमकीले रंग के पहिरावों से सुसज्जित होते थे, जो और दूसरे भारतवासियों के बीच भी रीति है। फिर, जब सिकन्दर ने पहिले ही धावे में * औनॉस

* जेनरल कनिंगहाम ने 'रानी घाट' के उजड़े हुए दुर्ग को ही यह चट्टान बतलाया है जो 'नौग्राम' से थोड़ी ही दूरी पर

(Aornos) नामक चट्टान को अधिकृत किया था, जिसका आधार सिन्ध नदी द्वारा उसके उद्गम के निकट आर्द्र किया जाता है, तब उसके अनुचरों ने इस वृत्तान्त को बढ़ा कर के यह कहा था कि हेराक्लीज ने उसी चट्टान पर तीन बेर धावा किया था और तीनों बेर वह हटाया गया था। वे यह भी कहते थे कि 'सिबी' उनकी सन्तान थे जो हेराक्लिज़ के साथ चढ़ाई पर आए थे, और अपने वंश का चिन्ह बनाए हुए थे, क्योंकि वे हेराक्लीज़ की नाईं चर्म धारण करते थे, और सोंटा लेकर चलते थे, और अपने बैलों तथा खच्चरों के ऊपर दण्ड का चिन्ह (दाग) देते थे। * इस कथा के पक्ष में वे प्रामीथियस (Promêthens) तथा काकसोस (Kaukasos) की कहानियों को, पाण्टास (Pontas) से यहाँ परिवर्तित करके, काम में लाते थे जिसके लिये उनका यही तुच्छ बहाना था कि उन्होंने पैरोपमीसडी (Paropanisadae) के बीच एक पवित्र गुफा देखा था। इसको वे कहते थे कि प्रामीथियस का बन्दीगृह था, जहां हेराक्लीज़ उसको मुक्त करने के हेतु आया था, और वह (Kaukasos) काकसोस यही था जिससे यूनानी लोग प्रामीथियस का वध होना बतलाते हैं। †

है जोकि १६ मील उत्तर-पश्चिम 'ओहिन्द' से है जिसको कि उन्होंने प्राचीनों की Embolima अनुमान किया है।

* कर्टियस (Cartius) के अनुसार 'सिबी' जिसको वह सोबिआई (Sobii) कहता है, हाइडास्पेस और अकिसिनीज के मध्यवर्ती देश में निवास करते थे। उनका नाम 'शिव' से निकला होगा।

† सिकन्दर के पहिले का कोई ग्रन्थकार भारतीय देवताओं का उल्लेख नहीं करता। मेसिडोनियन लोग जब भारतवर्ष में आए तब यूनानी प्रथा के अनुसार उन्होंने इस देश के देवताओं को अपने ही यहां के देवता समझा। शिव को, उनकी पूजा की निरंकुशता और बैकिक (Bacchic) रीति को देख कर, वे लोग इसे (Bacchus) बैकस ही मानने पर बाध्य हो गए, क्योंकि उन्होंने दोनों देवताओं के गुण में तथा दोनों के अहश्यमय

ध्यान में कुछ समानता देखी। यही उनके हेतु सुगम भी था क्योंकि जब युरीपाइडीज़ (Euripides) यह कल्पना बाँध चुका था कि डायोनिसस ने पूर्व में भ्रमण किया था, तब यह अनुमान करना कठिन न था कि प्रचुर उर्व्वरता का देखना भारतवर्ष में, जो अपनी उर्वरता के हेतु इतना प्रसिद्ध है, गया होगा। इस सम्मति को दृढ़ करने के लिये उन्होंने नामों के अल्प और अकारण मेल का व्यवहार किया। जैसे 'मेरु' पर्वत से उन्होंने उस देवता का लक्ष्य विचारा जो जिउस (Zeus) के जंघे से उत्पन्न हुआ था। जैसे केद्रकी (Kydrakœ) को उन्होंने डायोनिसस की सन्तान विचारा, क्योंकि उनके देश में अंगूर होता था, और उन्होंने देखा कि उनके राजा की सवारी बड़ी धूम धाम से निकलती थी। इसी प्रकार अल्प प्रमाणों ही पर उन्होंने 'कृष्ण' को हेराक्लीज़ से मिलाया और जहाँ कहीं उन्होंने, जैसे सिबी (Sibœ) के बीच, बनैले पशुओं के चर्म्म और दण्ड इत्यादि को देखा चट उन्होंने विचारा कि कभी न कभी 'हेराक्लीज़' अवश्य रहा रहा, था— Schwanbeck p 43

वे कहते हैं कि 'रानी घाट' दुर्ग के उत्तरी किनारे पर एक विशाल सीधी चट्टान है जिस पर लोग कहते हैं कि राजा 'बर' की रानी नित्य बैठा करती थी। दुर्ग भी राजा 'बर' ही का कहा जाता है, और पहाड़ी के नीचे के कुछ खंडहर राजा 'बर' के अस्तबल कहे जाते हैं; इसलिये मैं समझता हूं कि 'औनेसि' के पहाड़ी दुर्ग का नाम राजा 'बर' ही से निकला है, और 'रानी घाट' का भग्न दुर्ग, जेनरल अबाट के महासन की पहाड़ी अथवा जेनरल कोर्ट और मि० लोफ्टस के बनाए हुए राजा 'होदी' के महल की अपेक्षा सिकन्दर के 'औनेसि' कहे जाने के अधिक योग्य हैं।— Grote's History of India, Vol VIII pp. 437 8 footnote

खण्ड ४७ ।

Arr. Ind. V. 4–12.

(एरियन की इंडिका का अनुवाद देखो)

खण्ड ४८ ।

Josephus Contra Apion 1–20 (T. II. P. 451.)

निबोकद्रेसर (Nabuchodrasor) के विषय में ।

मेगास्थिनीज़ भी अपनी इंडिका की चौथी पुस्तक में यही सम्मति प्रगट करता है, जहां पर वह यह कह कर कि उसने आइबेरिया तक जय किया यह दिखलाने का यत्न करता है कि बाबिलोनियन लोगों का पूर्वकथित राजा (निबोकेद्रसर) हेराक्लीज़ से साहस में तथा अपने कर्म्मों के महत्व में बढ़ गया था ।

———:o.———

खण्ड ४८ (ख)

Joseph Aut. Jud X. II. 7 (T. 1. p. 538.)

[इस स्थान पर (नेबुकदनसर) ने उन्नतस्थल भी घूमने के लिये उठवाए, जो आँखों को पहाड़ ही देख पड़ते थे, और ऐसे रचे गए थे कि हर प्रकार के पेड़ उनमें लगे थे, क्योंकि उसकी स्त्री, जो मिडिया की भूमि में पाली गई थी, अपने पुराने घर ही पर के से दृश्य चाहती थी ।] मेगास्थिनीज़ भी अपनी इंडिका की चौथी पुस्तक में, इन वस्तुओं का उल्लेख करता है और इस प्रकार यह दिखलाने का यत्न करता है कि यह राजा, हिराक्लीज़ से साहस तथा अपने कर्म्मों के महत्व में बढ़ गया था क्योंकि वह कहता है कि उसने लिबिया (Libya) और आइबेरिया (Iberia) का एक बड़ा भाग जय किया था ।

———o———

खण्ड ४८ (ग)

Zonar, Ed. Basil 1557 T. 1. p. 87

बहुत से प्राचीन इतिहासकारों में से जो नेवुकदनसर का उल्लेख करते हैं जोज़ेफ़स बीरोसस, मेगास्थिनीज़ और डायोक्लीज़ को गिनाता है।

खण्ड ४८ (घ)

G. Syncell. T. 1. p 419, Ed Beun.
(p. 221 Ed. Paris p. 177 Ed Venett)

मेगास्थिनीज अपनी इंडिका की चौथी पुस्तक में नेवुकदनसर को हेराक्लीज़ से शक्तिमान प्रगट करता है, क्योंकि बड़े साहस और दृढ़ता से उसने लिबिया और आइबेरिया का अधिकांश जय किया था।

खण्ड ४९।

Abydea, Ap. Easeb. Prœp. Ev. 1. 41.
(Ed. Colon 1688 p. 4560)

नेबोकद्रेसर के विषय में।

मेगास्थिनीज़ कहता है कि नेबोकद्रेसर ने, जो हेराक्लीज़ से शक्तिमान था, लिबिया और आइबेरिया के विरुद्ध चढ़ाई की थी, और उनको जय कर के उसने इन लोगों की एक बस्ती पान्टास (Pontas) के दाहिनी ओर के भागों में बसाई थी।

खण्ड ५०।

Arr Ind 7. 9.

(एरियन की इंडिका का अनुवाद देखो)

खण्ड ५० (ख)

Pliny. Hist. Nat. IX. 55.

मोतियों के विषय में ।

कोई कोई ग्रन्थकार कहते हैं कि सीपों के झुंड में जैसे कि मधुमक्खियों में, जो आकार और सौन्दर्य्य में प्रख्यात होती हैं वेही आधिपत्य करती हैं । ये अपने को पकड़े जाने से बचाने में विलक्षण चतुर होती हैं, और पनडुब्बे इनकी अत्यन्त खोज रखते हैं । यदि ये पकड़ ली जाती हैं तो दूसरी सहज ही में जाल में आजाती हैं क्योंकि वे इधर उधर फिरती रहती हैं । तब वे मिट्टी के बरतनों में रक्खी जाती हैं, जहां पर ये नमक में बहुत नीचे गाड़ दी जाती हैं । इस क्रिया से मांस सब घुल जाता है और कड़ी कड़ी वस्तु जो मोती रहती है तले बैठ जाती हैं ।

खण्ड ५१ ।

Plegon. Mirab. 33.

पंडेइयन भूमि के विषय में ।

(मिलाओ खण्ड ३०-६)

मिगास्थिनीज़ कहता है कि पंडेइयन (Pandaian) राजा की स्त्रियां जब ६ वर्ष की रहती हैं तभी बच्चे प्रसव करती हैं ।

खण्ड ५० (ग)

Pliny. Hist. Nat. VI. XXI. 4-5.

भारतवासियों के प्राचीन इतिहास के विषय में ।

क्यों कि अकेले भारतवासी ही सब जातियों में ऐसे हैं जो अपने देश से कभी बाहर नहीं गए । पिता बैकचस (Bacchus) के

समय से सिकन्दर के समय तक उनके १५४ राजा गिनती में हुए जिनका राजत्वकाल ६४५१ वर्ष और ३ महीने तक हाता है।

Solin 52-5

पिता बैकस ही पहिला मनुष्य था जिसने भारतवर्ष पर चढ़ाई की, तथा उन सब में वही पहिला था जो पराभूत भारतवासियों पर विजयी हुआ। उससे लेकर सिकन्दर तक ६४५१ वर्ष और तीन महीने ऊपर गिने जाते हैं, यह लेखा उन राजाओं की संख्या में १५३ गिन कर किया गया है जिन्होंने मध्यवर्त्ती समय में राज्य किया।

खण्ड ४५।

* Arr vii ii 3-9.

कलनोस और मंडेनिस के विषय में।

यह प्रगट करता है कि सिकन्दर उस भयानक आधिपत्य के रहते पर भी जो कीर्त्ति की तृष्णा ने उस पर प्राप्त कर लिया था, उन वस्तुओं के परिज्ञान से हीन भी नहीं था जो उत्तम होती हैं, क्यों कि जब वह टेक्सिला (Taxila) में पहुँचा और भारतीय दार्शनिकों को उसने देखा, तब उनमें से, एक को अपने समक्ष लाए जाने की इच्छा उसे हुई, क्यों कि उसने उनके धैर्य्य की प्रशंसा की। डंडमिस (Dandamis) नामधारी इन दार्शनिकों में सब से श्रेष्ठ एक ने, जिसके पास और सब शिष्य की भांति रहते थे न कि केवल स्वयं जाने से नाहीं की, वरन् दूसरों को भी जाने से रोका। कहा जाता है कि उत्तर की भांति उसने यह कहा कि जैसे सिकन्दर Zeus जिउस का पुत्र है वैसे ही वह भी है और वह कोई वस्तु जो सिकन्दर की है नहीं चाहता (क्यों कि वह अपनी वर्त्तमान दशा ही में सुखी था) प्रत्युत उसने उन लोगों को देखा था जो उसके साथ इतनी भूमि और सागरों पर भ्रमण करते थे

---

* यह खण्ड एरियन के "सिकन्दर की चढ़ाई से" उद्धृत किया गया है उसकी 'इंडिका' से नहीं।

जिससे कुछ लाभ नहीं और इस बहुतेरी दौड़धूप से कुछ फ नहीं निकला। अतएव न तो वह किसी वस्तु की लालच रखता जिसक देने में सिकन्दर समर्थ था और न वह किसी वस्तु से डरत था जिसको सिकन्दर उसके दबाने के लिये कर सकता था क्यों कि यदि वह जीवित रहा, तो भारत वर्ष उसके लिये बहुत है, व उसे नियत ऋतु में फल दे हीं गा और यदि वह मर गया तो अपने कुसंस्कृत साथी शरीर से छुटकारा पा जावेगा। उस मनुष्य के स्वतंत्र प्रकृति का जान कर सिकन्दर ने इस पर अपना हाथ अत्याचार के लिये नहीं उठाया किन्तु कहा जाता है कि उस स्थान के एक दार्शनिक कालनोस को उसने वश में किया, जिसको मेगास्थिनीज़ स्वेच्छावरोध में अत्यंत हीन मनुष्य बतलाता है, और दार्शनिकों ने कालनोस की बड़ी निन्दा की, क्यों कि उस सुख को छोड़ जो वह उनके बीच भोगता था, वह ईश्वर के अतिरिक्त दूसरे स्वामी की सेवा करने गया।

संशयपूर्ण खण्ड।

खण्ड ५५।

Ælian, Hist, amin. XII. 8.

हाथियों के विषय में।

(मिलाओ खण्ड ३६-३७)

हाथी जब खूब खाता है, प्रायः जल पीता है, किन्तु जब युद्ध का परिश्रम उठाता है तब उसे मद्य दिया जाता है—किन्तु उस प्रकार का नहीं जो अंगूर से निकलता है वरन् दूसरा जो चावल से तैय्यार किया जाता है। फ़ीलवान अपने हाथियों के आगे आगे चलते हैं और उनके हेतु फूल बटोरते हैं, क्यों कि वे मीठी सुगंध के बड़े प्रेमी होते हैं, इससे वे चरागाहों में लाए जाते हैं कि वहां पर वे अत्यंत मीठी सुगंध के प्रभाव से सिखाए जांय। पशु उनके गंध ... ...सार फूलों को चुन लेता है और उन्हें फेंक देता है

क्यों कि वे एक टोकरे में इकट्ठे किए जाते है जिसको शिक्षक लिए रहता है । इसके भर जाने पर, अथवा यों कहिए कि चुनाई का कार्य्य समाप्त हो जाने पर, वह नहाता है और एक पूर्ण विषयी की रासकता के साथ स्नान का आनन्द लेता है। स्नान से लौटने पर वह अपने फूलों के लिये अधीर हो जाता है, और यदि उनके लाने में देर होती है तो वह चिंघाड़ना आरंभ करता है और भोजन का एक कौर तक नहीं ग्रहण करता जब तक कि समस्त फूल जो उसने बटोरे थे उसके सामने नहीं रक्खे जाते। इसके हो चुकने पर, वह अपनी सूँड़ से फूलों को टोकरे में से उठाता है और उन्हें अपनी चरनी के किनारे पर बिखरा देता है, और इस युक्ति से उनकी उत्तम सुगंध को अपने भोजन का मानों उपचार बनाता है। उनमें से बहुत से वह बिछावन की भांति अपने तबेले में छिनरा देता है, क्यों कि वह अपनी नींद को मीठी और आनन्दमयी बनाना पसन्द करता है।

हिन्दुस्थानी हाथी ऊँचाई में नौ हाथ और चौड़ाई में पांच हाथ होते थे। सारे देश में सब से बड़े हाथी वे होते थे जो प्रेसियन (Praisian) कहलाते थे और उनसे घट कर टैक्सिल (Taxilan)। *

खण्ड ५३।

Ælian, Hist. Anim III 46

एक श्वेत हाथी के विषय में।

एक हिन्दुस्थानी गजशिक्षक को एक सफ़ेद हाथी का बच्चा मिला, जिसको कि जब वह निरा बच्चा ही था वह अपने घर लाया,

* यह खण्ड मेगास्थिनीज का कहा जाता है, अपने विषय के कारण भी और इसलिये कि अवश्य ही एरियन ने इसके पहिले का (खण्ड ३८) तथा इसके आगे का (खण्ड ३९) वृत्तान्त मेगास्थिनीज़ ही से लिया है।—Schwanbeck.

और धीरे धीरे उसने उसे सर्वथा पालतू बना लिया और वह उस पर चढ़ने लगा। उसको इस पशु से जो प्रतिकार में उससे प्रेम करता था और अपने अनुराग से अपने पालन का बदला देता था, बहुत स्नेह हो गया था। अब, भारतवासियों के राजा ने इस हाथी के विषय में सुन कर, उसे लेना चाहा। किन्तु उस हाथी के स्वामी ने उस प्रेम की डाह कर के जो वह [हाथी] उसके लिये रखता था, और यह विचार कर कि दूसरा उसका स्वामी होगा, उसको देने से नाहीं किया, और वह अपने प्यारे हाथी पर चढ़ कर रेगिस्तान को भागा। राजा इस पर कुपित हुआ, और उसने हाथी को छीनने, तथा उस भारतवासी को दण्ड के निमित्त पकड़ लाने के लिये पीछे आदमी दौड़ाए। भगेड़ को पकड़ कर उन्होंने अपना कार्य्य साधन करने का यत्न किया, किन्तु उसने हाथी की पीठ पर से अपने धावा करनेवालों पर आक्रमण किया जो समर में अपने घायल स्वामी की ओर से लड़ता था। पहिले तो यही अवस्था रही, किन्तु इसके पीछे, जब भारतवासी घायल हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ा, तब अपने नमक के सच्चे उस हाथी ने उसको इस प्रकार छोप लिया जैसे युद्ध में सिपाही लोग अपने गिरे हुए साथी को, जिसको वे अपनी ढालों से ढाँकते हैं, और बहुत से धावा करनेवालों को मार डाला और बाकी को भगा दिया। तब अपने पालनेवाले के चारो ओर अपनी सूँड़ को लपेट कर उसने उसे अपनी पीठ पर उठा लिया, और घर पर तबेले में ले आया और उसके साथ इस प्रकार रहा जैसे एक सच्चा मित्र अपने मित्र के साथ और उस पर हर प्रकार की कृपा दृष्टि दिखाई। * [हे मनुष्यो! तुम कैसे नीच

---

* प्लूटार्क के 'सिकन्दर के जीवनचरित्र' में दिए हुए पोरस के हाथी के वृत्तान्त से मिलाओ —"इस हाथी ने सारी लड़ाई में अपनी समझ और राजा के शरीर की रखवारी के कई अद्भुत प्रमाण दिए। जब तक वह राजा लड़ने के योग्य रहा, उसने उसको बड़े साहस से बचाया और समस्त आक्रमणकारियों को हटा दिया; और जब उसने उसे भालों के बौछार और घावों को लिए हुए जिससे वह ढक गया

हो ! जब तुम कढ़ाई की झनकार सुनते हो तब सदैव प्रसन्नता से नाचनेवाले और निमंत्रण में सदैव उछलनेवाले हो किन्तु, आपत्ति की घड़ी में विश्वासघात करनेवाले और व्यर्थ तथा बिना किसी प्रयोजन के मित्रता के पवित्र नाम पर धब्बा लगानेवाले हो]।

खण्ड ५४।

Pseudo-Origon, Philosoph 24 Ed Delarw.
Paris 1733, vol. I. p 904.

ब्राह्मण तथा उनके दर्शनशास्त्र के विषय में।

(मिलाओ खण्ड ४१, ४४, ४५)

भारतवर्ष में ब्राह्मनों के विषय में।

भारतवर्ष में ब्राह्मनों के बीच ऐसे दार्शनिकों का एक सम्प्रदाय है जो स्वतंत्र जीवन रखते हैं और मांसाहर तथा अग्नि द्वारा पकाए हुए सब भोजनों से बचते हैं; फलों ही पर निर्वाह कर के वे संतोष करते हैं जिनको वे पेड़ों से तोड़ते तक नहीं वरन् जब वे भूमि पर गिर पड़ते हैं तब उन्हें उठाते हैं, और उनका पान तगवेन * नदी का जल है। जीवन भर वे नंगे फिरा करते हैं यह कह कर कि शरीर को आत्मा के परिधान की भाँति ईश्वर ने

था गिरने के निकट देखा, उसे गिरने से रोकने के लिये वह बहुत धीरे से घुटने के बल बैठ गया, और उसने अपनी सूँड़ से उसके शरीर से प्रत्येक भाला निकाल लिया।"

* कदाचित् संस्कृत का तुगवेणु है और आजकल की कृष्णा नदी की सहायक तुङ्गभद्रा।

दिया है*।वे मानते हैं कि ईश्वर प्रकाश है। किन्तु ऐसा प्रकाश नहीं जैसा हम नेत्रों से देखते हैं और न वैसा जैसा सूर्य्य और अग्नि वरन् ईश्वर उनके निकट शब्द है,—जिस वाक्य से उनका अभिप्राय अर्थ संयुक्त वाणी से नहीं है, वरन् बुद्धि के आदर्श से है, जिससे ज्ञान के गुप्त रहस्य बुद्धिमानों द्वारा निरीक्षण किए जाते हैं। किन्तु, यह प्रकाश जिसको वे 'शब्द' कहते हैं, और ईश्वर समझते ‚ वे कहते हैं कि ब्राह्मणों ही को ज्ञात है, क्योंकि अकेले उन्हीं लोगों ने अहङ्कार ‡ को परित्याग किया है, जोकि आत्मा का सब से

---

* Vide Ind. Ant. vol. V p 128 note । यह वेदान्त-दर्शन का सिद्धान्त है जिसके अनुसार आत्मा मानों नीचे ऊपर कई एक कोशों के भीतर बन्द है। पहिला वा आन्तरिक कोश शुद्ध और साधारण असंयुक्त तत्त्वों से निर्मित, ज्ञानात्मक है जिसमें पांचो इन्द्रियों से मिली हुई बुद्धि है।.दूसरा मानसिक कोश है जिसमें मन पिछले से अथवा जैसा कुछ लोग कहते हैं, कर्मेन्द्रियों से जुड़ा हुआ है। तीसरा इन्हीं इन्द्रियों तथा पारचालक शक्तियों का है और इन्द्रिय कोश कहलाता है। इन्हीं तीनों कोशों से सूक्ष्म सांचा बना हुआ है जो आवागमन में आत्मा के साथ रहता है। बाह्य कोश नियत मात्रा के अनुसार संघटित स्थूल द्रव्यों से बना है और स्थूल शरीर कहलाता है Colebrooke's *Essay on* the Philosophy of the Hindus.

† अर्थात् यह भावना कि. जो कुछ करता हूं मैं करता हूं अहं।

‡ *मिलाओ प्लेटो* (Plato. *Phœdo. cap.* 32) जहां साक्रेटीज़ आत्मा को एक प्रकार के बन्दीगृह में इस समय बन्द बतलाता है। यह पैथागोरियन लोगों का सिद्धान्त था, जिनका दर्शन, अपने अत्यन्त अद्भुत सिद्धान्तों में भी, भारतीय दर्शन से इतना अधिक मेल खाता है कि वह इस विचार को दृढ़ करता है कि वह भारतवर्ष ही से लिया गया था। ऐसी जनश्रुति भी थी कि पैथागोरस भारतवर्ष में आया था।

ऊपरी छिलका है। इस सम्प्रदाय के लोग मृत्यु को तिरस्कार और बेपरवाही से देखते हैं, और जैसा कि हम लोगों ने पहिले देखा है, वे सदैव ईश्वर के नाम का एक विलक्षण भक्ति के स्वर से उच्चारण करते हैं, और भजनों से उसकी आराधना करते हैं। न तो वे स्त्री रखते हैं और न सन्तान उत्पन्न करते हैं। लोग, जो उनके समान जीवन बिताना चाहते हैं नदी के दूसरे पार्श्व से हो कर उतरते हैं और उनके साथ लाभपूर्वक रहते हैं, अपने देश में कभी लौट के नहीं आते। वे भी ब्राह्मण ही कहलाते हैं यद्यपि वे उसी जीवन प्रणाली पर नहीं चलते, क्यों कि उस देश में स्त्रियां हैं जिनसे देशवासी उत्पन्न हुए हैं, और इन्हीं स्त्रियों से वे सन्तति उत्पन्न करते हैं। 'शब्द' के विषय में, जिसको वे ईश्वर कहते हैं वे मानते हैं कि वह साकार है, और वह बाहरी परिधान की भांति शरीर को धारण करता है वैसेही जैसे कि कोई ऊनी कुरती पहिने और जब वह उस शरीर को निकाल देता है जिससे वह लपेटा रहता है तब वह नेत्रों को प्रत्यक्ष हो जाता है। ब्राह्मण लोग बतलाते हैं कि उस शरीर में जिससे वे ढके रहते हैं, युद्ध होता है, और वे शरीर को युद्ध का उपजाऊ-उत्पत्तिस्थान-बतलाते हैं, और जैसा कि हम पहिले दिखला चुके हैं, उससे वैसेही लड़ते हैं, जैसे युद्ध में सिपाही लोग शत्रु से लड़ते हैं। आगे वे यह मानते हैं कि सब मनुष्य युद्ध के बन्दियों की भांति विषयतृष्णा, अमिताहार, क्रोध, हर्ष, शोक, मोह, लोभ इत्यादि आन्तरिक शत्रुओं द्वारा बँधे हैं, और जो ईश्वर के यहां जाता है वह केवल वही मनुष्य है जिसने इन सब पर विजय पाई है। सो, डडमिस (Dandamis) को, जिसका सिकन्दर मेसिडोनियन ने दर्शन किया था, ब्राह्मण लोग देवता कहते हैं, क्योंकि उसने शरीर के विरुद्ध संग्राम में विजय प्राप्त की, और दूसरी ओर वे कालनोस को ऐसा मनुष्य कह कर धिक्कारते हैं जो मलिनता से उनके दर्शनशास्त्र से पराङ्मुख हो गया अतएव, ब्राह्मण लोग, जब शरीर छोड़ देते हैं (तब) शुद्ध सूर्य्यप्रकाश को देखते हैं जैसे मछलियां उसको देखतीं हैं जब वे पानी के बाहर वायु में उछल आती हैं।

खण्ड ५५ ।

Pallad. de Bragmanibus, pp. 8, 20 Etc. Ed. London
(Camerar, libell, gnomolog. pp. 116, 124 &c.)

कालनोस और मंडेनिस के विषय में ।

(मिलाओ खण्ड ४१, ४४, ४५)

वे (ब्राग्मनी लोग) ऐसे फलों पर जिन्हें वे पा सकते हैं, तथा जंगली बूटियों पर जिन्हें भूमि आपसे आप उत्पन्न करती है, निर्वाह करते हैं और केवल जल पीते हैं । वे जंगलों में फिरा करते हैं और रात्रि में पेड़ों की पत्तिओं के बिछावन पर सोते हैं ।

"तुम्हारे झूठे मित्र, कालनोस ने तव यह सम्मति ग्रहण की, किन्तु वह हम लोगों के द्वारा तिरस्कृत किया जाता है और कुचला जाता है । पर तुम लोगों के द्वारा, यद्यपि तुम सब को बहुत सी हानि पहुंचाने में वह सहयोगी हुआ है, वह प्रतिष्ठित और पूजित है, पर हमारे समाज से वह घृणापूर्व्वक निरुपयोगी की भांति निकाल दिया गया है । और क्यों नहीं? जब कि प्रत्येक वस्तु जिसे हम लोग पैर तले कुचलते हैं वही तुम्हारे निकम्मे मित्र अर्थ लोलुप कालनोस की प्रशंसा की सामग्री है, किन्तु वह हमारा मित्र नहीं,— अभागा जीव, और अत्यन्त दुःखी प्राणी से भी अधिक दया के योग्य है, क्योंकि अपना चित्त अर्थ पर लगा के उसने अपनी आत्मा का सर्वनाश किया ! इसलिये न तो वह हम लोगों के योग्य जान पड़ा, और न ईश्वर की मित्रता के योग्य, और इससे न तो उसे चिन्ता की पहुँच के बाहर जङ्गलों में विचरने पर सन्तोष हुआ, और न वह कल्याणमय भविष्य की आशा से प्रसन्न हुआ; क्योंकि द्रव्य के प्रेम से उसने अपनी अभागिनी आत्मा के जीवन ही को विनष्ट कर दिया ।

"पर, हमारे मध्य में डंडमिस नामी एक ऋषि हैं, जिनका घर जंगल है, जहां पर वे पर्णशय्या पर सोते हैं, और जहां पर उनके

निकट ही शान्ति का सोता है, जिसका वे जल पीते हैं, मानों माता के पवित्र स्तन का पान करते हैं।"

सिकन्दर बादशाह ने जब यह सब बातें सुनीं तब उसे उस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को जानने की इच्छा हुई, सो उसने उनके गुरु और अधिपति डंडमिस को बुला भेजा.......................

अतएव, ओनेसिक्रेटीज़ (Onesikratês) उसे लाने के लिये प्रेषित किया गया और जब उसने महर्षि को देखा उसने कहा,"हे ब्राह्मणों के आचार्य्य, तुझे बधाई है! शक्तिमान् देवता ज़िउस का पुत्र, बादशाह सिकन्दर, जो समस्त मनुष्यों का अधीश्वर है, तुम्हें अपने पास बुलाता है और यदि तुम स्वीकार करोगे तो वह तुम्हें बड़े और सुन्दर पारितोषिकों से पुरस्कृत करेगा, पर यदि तुम नाहीं करोगे तो तुम्हारा सिर काट लेगा।"

डंडमिस ने मन्द हास्यपूर्वक उसे अन्त तक सुना, पर इतना तक न किया कि अपनी पर्णशय्या से अपना सिर उठावे, और लेटे ही लेटे यह तिरस्कार पूर्ण उत्तर दिया;—" सर्वोपरि राजा, ईश्वर कभी बलात् हानि का कर्ता नहीं है, वरन् प्रकाश, शान्ति, जीवन, जल, मनुष्य के शरीर तथा आत्मा का स्रष्टा है, और इन्हें वह तो लेता है जब मृत्यु इनको मुक्त करती है और ये तब किसी प्रकार बुरी वासनाओं के वशीभूत नहीं रहते। वही अकेला मेरी आराधना का देवता है जो हिंसा से घृणा करता है और युद्ध नहीं उभाड़ता। किन्तु, सिकन्दर देवता नहीं है क्योंकि उसे अवश्य मृत्यु को चखना होगा; और कैसे ऐसा मनुष्य जैसा वह संसार का स्वामी हो सकता है, जो अभी टाइबरबोआस (Tiberboas) के अगले किनारे तक भी नहीं पहुँचा है, और अभी तक चक्रवर्त्ती राज्य के सिंहासन पर भी नहीं बैठा है। इसके अतिरिक्त, न तो सिकन्दर ने अभी जीते जी हेडिस (Hades) में प्रवेश किया है और न वह पृथ्वी के मध्यवर्त्ती देशों के बीच सूर्य्य की गति को जानता है, और उसकी सीमा पर की जातियों ने तो यहां तक कि उसका नाम भी नहीं सुना है। यदि उसका वर्त्तमान राज्य उसकी इच्छा भर विस्तृत नहीं है तो वह गंगा नदी को पार करे, और वह मनुष्यों को सँभालने के योग्य देश पावेगा यदि हमारी ओर का देश उसे धारण

करने के लिये संकीर्ण है। पर, यह जान लो कि जो कुछ सिकन्दर मुझे देना चाहता है और जो पारितोषिक देने का मुझे वचन देता है, वे सब वस्तुएं मेरे लिये नितान्त निरर्थक हैं; पर वे वस्तुएं जिन्हें मैं मूल्यवान समझता हूं और यथार्थ उपयोग और लाभ की पाता हूं यही पत्तियां हैं जिनका मेरा घर है, यही खिले हुए पौधे हैं जो मुझे स्वादिष्ट भोजन पहुंचाते हैं, और यही जल है जो मेरा पान है, तथा और सब दूसरी सम्पत्ति और सामग्री, जो व्यग्र चिन्ता से इकट्ठी की जाती है, उनके लिये विनाशकारिणी ठहरती है जो उन्हें बटोरते हैं, और केवल शोक और क्लेश ही उपजाती हैं, जिनसे कि प्रत्येक दीन प्राणी पूर्णरूप से भरा है। और मेरे लिये क्या? मैं वनस्पतियों पर लेटता हूं, और, ऐसी कोई वस्तु पास न रख कर जिसकी संरक्षा की अवश्यकता हो, अपनी आंखों को शान्तिमयी निन्द्रा में बन्द करता हूं। पर यदि रखवाली करने के लिये मेरे पास सुवर्ण होता तो वह निन्द्रा को हर लेता। पृथ्वी मुझे प्रत्येक वस्तु पहुंचाती है जैसे माता अपने बच्चे को दूध पहुंचावे। जहां कहीं मैं चाहता हूं जाता हूं, कोई चिन्ता नहीं है जिससे मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध व्यग्र होने के लिये बाध्य होऊं। यदि सिकन्दर मेरा सिर काट डालेगा तो वह मेरी आत्मा को तो नहीं नष्ट कर सकता। केवल मेरा शिर हीं, जो अब चुप है, रह जायगा, किन्तु आत्मा शरीर को एक फटे वस्त्र भांति छोड़ कर, अपने स्वामी के पास चली जायगी, जहां से वह ली गई थी। तब मैं सूक्ष्म शरीर धर कर अपने ईश्वर के समीप आरोहण करूंगा, जिसने हमें मांस में बन्द कर दिया और हमें पृथ्वी पर छोड़ दिया, यह देखने को कि यहां नीचे हम उसकी आज्ञाओं को मानते हैं वा नहीं; और जो हम से, जब हम यहां से उसके सम्मुख जायंगे हमारे जीवन का लेखा भी मांगेगा, क्योंकि वह समस्त मदान्ध अत्याचारों का विचार-कर्ता है; इसलिये कि सताए गए लोगों की हाय सतानेवालों के लिये दंड होगी।

"तब, सिकन्दर इन धमकियों से उन्हें डरावे जो सुवर्ण और धन की इच्छा रखते हैं, और जो मृत्यु से डरते हैं, क्योंकि हम लोगों के विरुद्ध तो ये दोनों अस्त्र शक्तिहीन हैं, क्योंकि ब्रागमनीज़

न तो सुवर्ण चाहते हैं और न मृत्यु से डरते हैं। तब, जाओ! और सिकन्दर से यह कहो 'डंडामिस को किसी वस्तु की, जो तुम्हारी है आवश्यकता नहीं है इसलिये वह तुम्हारे पास नहीं जायगा; किन्तु, यदि तुम डंडमिस से कोई वस्तु चाहते हो तो तुम उसके पास आओ।' *

आनेसिक्रेटीज़ से भेंट की वृत्तान्त पाने पर सिकन्दर को डंडामिस को देखने की पहिले से भी अधिक प्रबल इच्छा हुई; जो यद्यपि वृद्ध और नग्न था, पर एक मात्र प्रतिद्वन्दी था जिसको उस, बहुत सी जातियों के विजेता ने अपनी बराबरी से अधिक पाया।

खण्ड ५५ [ख]

Ambrosius, De Moribus Brachmanorum. pp 62, 68 &c Ed. Pallad. London 1688

कलेनस और मेडेनिस के विषय में

वे (ब्राचमन लोग) जो कुछ भूमि पर पाते हैं वही खाते हैं, जैसे, चौपायों की भांति पेड़ों की पत्तियां और जंगली बूटियां।...

"कलेनस तुम्हारा मित्र है, किन्तु वह हम लोगों द्वारा धिक्कारा और कुचला जाता है। तब, वह, जो तुम्हारे बीच बहुत सी हानियों का कर्ता हुआ, तुम्हारे द्वारा पूजित और प्रतिष्ठित होता है, पर चूंकि वह किसी अर्थ का नहीं है, इससे वह हम लोगों द्वारा परित्यक्त है, और जो वस्तुएं वास्तव में हम लोग नहीं खोजते, वे कलेनस को, उसके अर्थ लोभ के कारण, प्रसन्न करती हैं। परन्तु वह हमारा नहीं हुआ,–ऐसा मनुष्य जिसने दुर्भाग्यवश अपनी आत्मा

* "दूसरे लोग कहते हैं कि डंडामिस ने दूतों से कुछ बात चीत नहीं की, केवल इतना ही पूछा कि 'क्यों सिकन्दर ने इतनी लम्बी यात्रा की"—Plutarch's Alexander.

को क्षति पहुंचाई और विनष्ट किया, जिसके कारण वह परमेश्वर अथवा हमारे मित्र होने के स्पष्टतया अयोग्य है; न तो वह इ संसार में जंगलों के बीच रक्षा का अधिकारी रहा, और न व उस कीर्त्ति की आशा कर सकता है जो भविष्य में मिलती है।"

जब सम्राट् सिकन्दर जंगलों में आया तो वह जाते सम डेंडमिस को नहीं देख सका ... ...

अतएव, जब उपरोक्त दूत डंडमिस के पास आया, उस उसे इस प्रकार सम्बोन्धन किया— "बड़े बृहस्पति (Jupiter के पुत्र, सम्राट् सिकन्दर ने, जो मानव जाति का अधीश्वर है आज्ञा दी है कि तुम उसके पास शीघ्र चलो, क्योंकि यदि तुम चलोगे तो वह तुम्हें बहुतेरे पुरस्कार देगा किन्तु यदि तुम नाहीं करोगे तो वह तुम्हारे तिरस्कार के दंड की भांति, तुमारा शिरच्छेद करेगा। जब ये शब्द डंडमिस के कान में पड़े, वह पत्तियों पर से जिस पर वह पड़ा था नहीं उठा, वरन् लेटे लेटे मुसकिराते हुए उसने इस प्रकार उत्तर दिया— "परमेश्वर किसी की हानि नहीं कर सकता प्रत्युत उन्हें फिर जीवन का प्रकाश देता है जो प्रस्थान कर चुके हैं। अतएव अकेला वही मेरा ईश्वर है जो हत्या रोकता है और युद्ध नहीं उभाड़ता। किन्तु सिकन्दर ईश्वर नहीं है क्योंकि उसको स्वयं मरना होगा। फिर वह कैसे सब का अधीश्वर हो सकता है जिसने अब तक टाइबरोआस नदी को पार नहीं किया है न समस्त संसार को अपना घर बनाया है न यमलोग (hades) के वृत्त को पार किया है, न जगत के मध्य में सूर्य्य की गति को देखा है? अतएव बहुत सी जातियां उसका नाम तक अभी नहीं जानतीं। पर यदि वह देश जो उसके अधिकार में है उसे धारण नहीं कर सकता, वह हमारी नदी को पार करे और वह ऐसी भूमि पावेगा जो मनुष्यों का पालन करने योग्य है। वे समस्त वस्तुएं जिनको सिकन्दर देने को कहता है, यदि मुझे देगा तो वे मेरे लिये निरर्थक होंगी। घर के स्थान पर मेरे पास पत्तियां हैं, घास की बूटियों पर मैं निर्वाह करता हूं और पानी पीता हूं, परिश्रम से एकत्र की हुई दूसरी वस्तुएं जो नाश हो जाती हैं और उन्हें सिवाय शोक के और कुछ नहीं देतीं जो उन्हें ढूंढते फिरते हैं इन्हें मैं तुच्छ समझता हूं। अतएव मैं अब निर्द्वन्द, पड़ा रहता हूं

और शांत मरे हुए किसी वस्तु की चिन्ता नहीं करता। यदि मैं सुवर्ण रखना चाहता हूं तो मैं अपनी निद्रा नष्ट करता हूं, पृथ्वी प्रत्येक वस्तु हमें पहुंचाती है जैसा माता अपने शिशु के साथ करती है। जहां कहीं मैं जाना चाहता हूं चल देता हूं, और जहां कहीं मैं नहीं जाना चाहता किसी चिन्ता की आवश्यकता मुझे जाने को वाध्य नहीं कर सकती। और यदि वह मेरा शिर काटलेना चाहता है वह मेरी आत्मा नहीं ले सकता; वह केवल गिराहुआ सिर लेगा, किन्तु जाती हुई आत्मा सिर को एक वस्त्र के टुकड़े की भांति छोड़ देगी, और जहां से उस को पाया था उसी को अर्थात् पृथ्वी को लौटा देगी। किन्तु जब मैं सूक्ष्म शरीर में होऊंगा मैं परमेश्वर के समीप आरोहण करूंगा, जिसने उस इस मांस में बन्द किया था। जब उसने यह किया उसने हमारी परीक्षा करनी चाही कि, उसे छोड़ने के उपरान्त हम इस संसार में किस प्रकार रहेंगे। और इसके अनन्तर जब हम उसके पास लौट जायगे वह हमसे इस जीवन का लेखा मांगेगा। उसके पास खड़ा हो कर मैं अपनी क्षति को देखूंगा, और उन पर उनके न्याय का विचार करूंगा जिन्होंने मुझे क्षति पहुंचाई थी, क्यों कि दुखियों की हाय और पुकार सतानेवालों के लिए दण्ड हो जाती है।

"सिकन्दर इससे उन्हें धन की दे जो धन की इच्छा रखते हैं या मृत्यु से डरते हैं, जिन दोनों को मैं तुच्छ समझता हूं। क्यों कि ब्राह्मन लोग न तो सुवर्ण चाहते हैं और न मृत्यु से डरते हैं। सो, जाओ और सिकन्दर से यह कहो-डण्डमिस तुम्हारी कोई वस्तु नहीं चाहता, किन्तु यदि तुम उसकी कोई वस्तु चाहते हो, तो उसके पास जाने से तिरस्कार न करो"।

जब सिकन्दर ने इन बातों को द्विभाषी द्वारा सुना उसे ऐसे मनुष्य के दर्शन की और भी इच्छा हुई, क्यों कि जिसने बहुत सी जातियों को दमन किया था, वह एक वृद्ध नग्न मनुष्य द्वारा पराजय हुआ।

खंड ५६ ।

Pliny. Hist Nat. Vi. 21. 8-23, 11.

भारतीय जातियों की सूची * ।

यहां से (हाइफ़ेसिस Hyphasis से) दूसरी यात्राएं सिल्यूकस निकेटर के लिये इस प्रकार हैं— १६८ मील हेसिड्रस (Hesidrus) तक और उतना ही जोमेनीज़ नदी तक (कुछ प्रतियों में ५ मील बढ़ाया है); वहां से गंगा तक ११२ मील । ११६ मील रोडोफ़ा (Rhodopha) तक (दूसरे इस दूरी को ३२५ मील बतलाते हैं) । कलिनिपाक्स (Kalinipax) नगर तक १६७–५०० । दूसरे २६५ मील बताते हैं । वहां से जोमेनीज़ (Jomanes) और गंगा के सङ्गम तक ६२५ मील, (बहुत से लोग १३ मील बढ़ाते हैं) और पालिम्बोथ्रा नगर तक ४२५ मील । गंगा के मुहाने तक ७३८ मील । †

---

* इस सूची का अधिकांश प्लिनी ने मेगास्थिनीज़ से लिया है Schwanbeck p 16

† लिपियों के अनुसार ६३८ वा ६३७ मील । इस प्रसिद्ध यात्रा विवर्ण में गिनाए हुए सब स्थान राजमार्ग पर पड़ते थे, जो इंडस (सिन्ध) से पालीबोथ्रा तक गया था । वे इस प्रकार मिलाए गए हैं । हेसिडस Hesidrus आजकल की सतलज है और प्रस्थान स्थल उसके और हाइफेसिस (Hyphasis) [आजकल की व्यास] के सङ्गम के ठीक नीचे पड़ता था । सीधा मार्ग वहां से (लोधियाना सिर हिन्द और अम्बाला होते हुए) पथिक को जोमेनीज़ के घाट पर जो आजकल की जमुना है, आधुनिक बरिया (Bureah) के पास ले जाता था, जहां से गंगा के किनारे उस स्थान पर जाता था जो दी हुई दूरी (११२ मील) के विचार से कहीं जगद्विख्यात् हस्तिनापुर के पास रहा होगा । दूसरी

चलकर रोडाफा (Rhodopha) थी, जिसका ठिकाना, उसका नाम चट्टी यहा से और गगा से उसकी दूरी (११९ मील) विचारने से दभई (Dabhai) पर स्थिर होता है, जो अनूपशहर से १२ मील दक्षिण एक छोटा सा कसबा है। दूसरी चट्टी कालिनिपक्स (Kalinipax) को, मैनर्ट (Mannert) और लेसन (Lassen) कन्नौज (संस्कृत कान्यकुब्ज) बतलाते हैं; किन्तु M De St Martin इसका यह कह कर विरोध करते हैं कि प्लिनी, ऐसे प्रसिद्ध और बड़े नगर का ऐसे उटपटाग नाम से उल्लेख नहीं कर सकता, और उसका ठिकाना इक्षुमती नदी के तट के पास कहीं बतलाते हैं, जो भारतीय महाकाव्यो में वर्णितपञ्चाल की एक नदी है। वे कहते हैं कि यह नदी काली नदी के नाम से पुकारी जाती रही होगी जैसा कि उसका सम्प्रति प्रचलित 'कालिनी' और 'कालिन्द्री' नाम सूचित करते हैं। चूंकि 'पक्स' संस्कृत 'पक्ष' का अवतरण है, अतएव 'कलिनिपक्स' नाम की ओर देखने से जान पडता है कि वह अवश्य काली नदी के निकट कोई नगर रहा होगा।

इन संख्याओं ने जो दूरी को सूचित करती हैं बहुत से विवाद उत्पन्न किए हैं। बहुत सी तो उन में से या तो एक दूसरे ही से विरुद्ध हैं अथवा यथार्थ दूरी से। इसलिये यह विवरण साधारणत: जहां तक संख्या से सम्बन्ध रखता है ऊटपटाग ही समझा गया है। किन्तु M. De St Martin इन संख्याओं को प्राय स्वीकार कर के, उन्हें ठीक बतलाते हैं। पहिली कठिनाई तो इन शब्दों में मिलती है "दूसरे इस दूरी को ३२९ मील बतलाते हैं"। "इस दूरी" से गंगा और रोडोफा के बीच की दूरी से अभिप्राय कदापि नहीं है, वरन् हेसिड्रस और रोडोफा के बीच की दूरी से है जो कि संख्याओं को जोडने से ३९९ मील होती है। दूसरों का घटा कर अटकल ३२९ मील पटियाला, थानेश्वर, पानीपत और दिल्ली होते हुए एक अधिक

सीधे मार्ग की माप है। दूसरी कठिनाई प्राय: मूल के गड़बड़ से उपस्थित हुई है। यह इन शब्दों में मिलती है "Ad Calmipax oppidum CL XVII. D. Alii. CCLXV. mill" | संख्या D में प्राय: ५०० पग या आधी रोमन मील ग्रहण की गई है, जिसने अनुवाद इस प्रकार किया गया है—"कालिनिपक्स तक १६७½ मील। दूसरे २६२ मील देते हैं" । किन्तु M De St Martin अनुमान करते हैं कि मूल के किसी गड़बड़ से D दूसरी संख्या से प्रथक हो गया है जिसमें संयुक्त वह, संख्या में, DLXV होना था— अर्थात् ५६५ किन्तु यह प्रथम ही से इस प्रकार संयुक्त था यह बात यह देखने से सिद्ध होती है कि ५६५ मील ठीक ठीक हेसिड्रस से कालिनापिक्स तक की दूरी का जोड़ होता है जो इस प्रकार है:—

हेसिड्रस से जोमेनीज़ तक	....	१६८ मील
जोमेनीज़ से गंगा तक	....	११९ "
गंगा से रोडोफा तक	....	११९ "
रोडोफा से कालिनिपक्स तक	....	१६७ "
	कुल	५६६ मील

दूसरी कठिनता, प्लिनी की सम्पूर्ण और एक खण्ड की दूरी को एक में गोलमाल कर देने की भूल के कारण उपस्थित होती है जब यह कहता है कि कालिनिपक्स से गंगा और जोमेनीज़ के सङ्गम की दूरी ६२५ मील है, जोकि वास्तव में केवल २२७ के लगभग है। संख्याएं उटपटांग हो सकती हैं, किन्तु यह अधिक सम्भव है कि वे संख्याएं नदियों के सङ्गम से कालिनिपक्स की अपेक्षा और दूर की किसी मार्ग पर की चट्टी को सूचित करती हैं। यही जोमनीज़ का मार्ग रहा होगा, क्यों कि दूरी—

कोमिनीज़ से गंगा तक	....	....	....	११२ मील है
वहां से रोडोफ़ा तक	....	....	....	११९ " "
वहां से कलिनिपक्स तक	....	....	....	१६७ " "
वहां से नदियों के संगम तक	....	....	....	२२७ " "
			कुल	६२५ मील

यह ठीक ५००० स्टेडिया के बराबर है जो कि टॉलमी, अथवा पिउटिंगर सूची के 'पैमाने' और कोसवार्सी के 'अन्तर' की लम्बाई है।

आगे लेखे का सार M. Do St. Martin इस प्रकार देते हैं:—

	रोमन मील		स्टेडिया
हेसिड्रस से कोमेनीज़ तक	१६८	....	१३४४
कोमेनीज़ से गंगा तक	११२	....	८९६
वहां से रोडोफ़ा तक	११९	....	९५२
अतएव हेसिड्रस से रोडोफ़ा तक अधिक सीधे मार्ग से	३२५	....	२६००
रोडोफ़ा से कलिनिपक्स तक	१६७	....	१३३६
कुल दूरी हेसिड्रस से कलिनिपक्स तक	५६५	....	४५२०
कलिनिपक्स से गंगा यमुना के संगम तक	(२२७)	....	(१८१६)
कुल दूरी कोमेनीज़ के मार्ग से गंगा के संगम तक	६२५	....	५०००

तीनों नदियों के संगम से पालिबोथ्रा तक ही दूरी ४२० मील बताता है, पर चूंकि यह वास्तव में २४८ मील है, संख्याएं प्रायः बदली गई हैं। अन्त में वह पालिबोथ्रा से गंगा के मुहाने तक की दूरी ६३८ मील देता है जो कि मेगास्थिनीज़ के अटकल से ठीक ठीक मेल खा जाती है, जो कि उसे ५००० स्टेडिया कहता है— यदि उस की अटकल वास्तव में यही थी न कि ६००० स्टेडिया जैसा स्ट्रैबो एक

जातियां जिन्हें हम बिना ऊबे हुए इमोडाज (Emodas) की अचला से, जिस की एक शाखा * इमौस (Imaus) कहलाती है, गिना सकते हैं वे ये हैं। इसरी (Isari), कासिरि (Cosyri), इज़गी (Izgi), और पहाड़ियों पर चिमिश्रोतोसगी, † तथा

स्थल पर कहता है। पटना से तमलूक (गंगा के मुहाने पर का प्राचीन बन्दरगाह ताम्रलिप्त) तक की दूरी भूमि की राह से ४४९ अङ्गरेजी अथवा ४८० रोमन मील है। नदी की राह जो घुमाव के साथ गई है यह अधिक दूर पड़ता है।—E'lude Sur le Geographie Grecque et- Latinede L' uide par P. V. De St Martin pp 271-278.

* इमोडस से साधारणतः हिमालय श्रेणी का वह भाग समझा जाता था जो नैपाल और भूटान होता हुआ आगे समुद्र तक चला गया था। इस नाम के दूसरे रूप ये हैं—इमोडा Emoda इमोडन Emodan हेमोडीज़ Hamodês। प्रो० लैसन इसे संस्कृत 'हैमवत' और प्राकृत 'हैमोत' से निकला हुआ बताते हैं। यदि ऐसा ही है तो हमोडीज ही अधिक शुद्ध है। दूसरी उत्पत्ति 'हेमाद्रि' से बनाई जाती है। इमौस Imaus संस्कृत 'हिमवत' को सूचित करता है। पहिले पहिले यह नाम यूनानियों द्वारा हिन्दूकुश और हिमालय के लिये व्यवहृत हुआ था पर कालान्तर में 'बोलर श्रेणी' को सूचित करने के लिये प्रयोग किया गया। प्राचीन लोग समझते थे कि यह श्रेणी, जो उत्तर दक्खिन गई है, उत्तरी एशिया को "सिकादिया इमौस के अन्तर्गत" और सिकादिया इमौस के बाहर इन दो भागों में विभक्त करती है; और यह बहुत काल तक चीन और तुर्किस्तान की बीच की सीमा रही है।

† ये चार जातियां काश्मीर अथवा उसके आस पास कहीं बसती थीं। 'इसरी' तो अज्ञात हैं, परन्तु कदाचित् वे ही हैं जिन्हें प्लिनी ने पहिले ब्रिसरि (Brysari) कहा है। 'कासिरि' तो सहज में

ब्राक्मने, (Brachmanae) जिस नाम के अन्तर्गत कई जातियां हैं जिनमें से 'मक्को कलिङ्ग' (Macoo calingae) है *

'खसरि' से मिलाए जा सकते हैं जो महाभारत में 'काश्मीरियों' और 'दरदस' के पड़ोसी कहे गए हैं। यह अनुमान किया गया है कि उनके नाम का अवशेष 'खाचर' में मिलता है, जो गुजरात के काठी लोगों के तीन बड़े भागों में से एक है, जो पंजाब से गए हुए जान पड़ते हैं। इनकी, गालमी में सिज़गीज (Sizyges) के नाम से वर्णित हैं, जो कि सीरिकी (Seriké) के रहनेवाले थे। किन्तु यह भूल है क्योंकि वे काश्मीर के ऊपर, उत्तर और उत्तर-पश्चिम कोण के हिमाच्छादित देश के रहनेवाले थे। चिसिओनोसगी वा चिरोतोसगी (Chirotosagi) कदाचित् चिकोने (Chiconœ) हैं (जिसकी प्लिनी दूसरे स्थल पर भी चरचा करता है)। और यह 'सगी' जो बढ़ा हुआ है वह कदाचित् उन्हें 'शक' लोगों की एक शाखा सूचित करने के लिये। नून् 'शक' अर्थात् सिकिदियन लोगों ने आर्य्यों के विजय के पूर्व ही भारतवर्ष में उत्पात किया था। मनुस्मृति में (१०—४४) इनका उल्लेख पौंड्रक, ओड्र, द्राविड, कम्बोज, यवन, परद, पहलवी, चीन, किरात, दरदस और खशस के साथ हुआ है। चिरोतोसगी ही उनके नाम का ठीक पाठ है तो उनके 'किरात' होने में बहुत कम सन्देह है—See P. V. De St Martin pp 195-197. But for the Khâsas see Ind. Anti Vol IV. P 323.

* V. I Brachmanæ प्लिनी तुरन्त अपने पाठकों को काश्मीर के पर्वतों से गंगा घाटी के नीचे के भागों में ले आता है। यहां पर वह ब्रचमनी का निवासस्थान बतलाता है जिन्हें वह बस्ती की एक प्रधान जाति नहीं समझता है (जो कि वे वास्तव में थे) वरन् बहुत सी उपजातियों से बनी हुई एक शक्तिमती जाति है, जिन में से मक्कोकालिङ्ग भी एक हैं। यह जाति तथा गंगारिड कालिङ्ग (Ganga-

'ridæ Kalingæ)और तदुपरान्त वर्णित मांडोगलिङ्ग आदि (Modogalingæ) की बहुत दूर से फैली हुई कलिङ्ग जाति की एक शाखा है जो कि पहिले गंगा के डेल्टा से ले कर देश के समस्त पूर्वीय किनारे पर फैली हुई थी, यद्यपि पीछे से वह ओड़ीसा से और दक्षिण तक नहीं रहीं। महाभारत में लिखा है कि वे बंग तथा और दूसरी तीन प्रधान जातियों के साथ उस देश में बसते थे जो मगध और समुद्र के बीच में स्थित है। अतएव, मक्कोकलिङ्गे ही कलिङ्ग के 'मव' हैं। M. De. St. Martin कहते हैं "कि मव नीचे गंगावर्ती देशों में सब से अग्रगण्य और विस्तृत अनार्य्य जातियों में से है जहां यह आराकान और पश्चिमीय आसाम से ले कर (जहां यह 'मोव' के नाम से पाई जाती है) नैपाल की घाटियों तक (जहां वह मावर कहलाती है) फैल कर कई प्रधान प्रधान समुदायों में विभक्त हैं। दक्षिणी बिहार (प्राचीन मगध) में वे मघय, मगही या मध्य कहलाते हैं, बंगाल में प्राचीन मवु तथा ओड़ीसा में 'मगोर'। अपनी स्थिति के कारण ये 'मगोर' ही हमारे मक्कोकलिङ्गे हो सकते हैं। वही ग्रन्थकार फिर कहता है, "मोदोगलिङ्ग को उसी प्रकार प्राचीन 'मद' प्रगट करता है जो कि मनुस्मृति में आर्य्यावर्त्त की म्लेक्ष जातियों की एक बस्ती का नाम कहा गया है, जिसका उल्लेख मनु गंगा के दक्षिण बसनेवाली अन्ध्र नाम की एक दूसरी जाति के साथ करता है। मुंगेर के शिलालेख में भी जो आठवीं शताब्दी के आरम्भ का है, 'मेद' नाम की इस देश की एक जाति का नाम आया है (Asiatic Researches Vol. I p. 126 Calcutta, 1788) और जो बात ध्यान देने योग्य है वह यह है कि वह 'अन्ध्र' के नाम के साथ ही संयुक्त है, जैसा कि मनु में। लिनी उसके रहने का स्थान गंगा का एक बड़ा द्वीप बतलाता है; और गलिङ्ग शब्द से जिसके साथ उनका नाम संयुक्त है, अवश्य ही इस द्वीप की स्थिति, समुद्रतट की ओर—कदाचित डेल्टा में—ठहरती है।"

* प्रिनस (Prinas) और कैनस (Cainas) नदी (जो गंगा में गिरती है) दोनों जलयात्रा योग्य हैं †। कलिङ्गे कहलाने-

---

गंगारिडे (Gangaridæ) अथवा गंगरिडीज की स्थिति स्थूलरूप से लोअर बंगाल में ठहरती है। वह कई आदिम जातियों से संयुक्त थी जिनमें कालान्तर से कुछ न कुछ आर्य्यत्व आ गया। चूंकि संस्कृत कोई शब्द नहीं मिलता जिससे उनका नाम मिलता हो-इस से वह यूनानी गढ़त का माना गया है, (Lassen. Ind. Alt. Vol. II. p, 201) किन्तु यह भूल है क्योंकि मेसिडोनियन आक्रमण के समय यह अवश्य प्रचार में रहा होगा, क्योंकि दाक्षिण देश विषयक प्रश्नों के उत्तर में सिकन्दर से बतलाया गया कि गंगा का प्रदेश दो मुख्य जातियों से बसा है- एक प्रेसिआई दूसरी गंगरिडे। M De St Martin विचारते हैं कि उनके नाम का अवशिष्ट दाक्षिण विहार के गंघोरों (Gonghu) में पाया जाता है, जिनकी जनश्रुतिया उनकी उत्पत्ति तिरहुत में बतलाती हैं; और उनकी राजधानी पर्थेलिस (Portalis) को वर्द्धन (वर्द्धमान का निकृतरूप) आधुनिक वर्दमान से मिलाया है। परन्तु दूसरे लोग, जैसा पहिले कहा गया है, इन्हें महानदी के किनारे बतलाते हैं। टालमी में उनकी राजधानी गंगी (वा गंजी) लिखा है जो अवश्य उसी स्थान पर कहीं रही होगी जहा आजकल कलकत्ता है। गंगरिडीज का वर्णन वर्जिल (Virgil) ने किया है।

* v. 1 Purnas प्रिनस कदाचित् तमसा वा टवस है जो पुराणों में पर्णाशा कही गई है। कैनस श्वानवक के विरोध करने पर भी, केन से मिलाई जा सकती है जो कि जमुना की एक सहायक है।

† गंगा की इन सहायक नदियों तथा और दूसरों के मिलान के लिये "एरियन का नोट' देखो— Indin Antiuary vol VI P 331.

दाबी जाति समुद्र के अत्यंत निकट रहती है, और उससे ऊपर मंडे (Mandei), तथा मल्ली (Malli) जिनके देश में 'मल्लस' पर्वत है; इस समस्त ज़िले की सीमा गंगा है।

(२२) यह नदी कुछ लोगों के अनुसार नील की भांति बिना जाने हुए उद्गमों से निकलती है, और उसी प्रकार अपने मार्ग पर के देशों को तराबोर करती है; दूसरे लोग कहते हैं कि यह सिकदियन पर्वतों से निकलती है और उसकी उन्नीस सहायक नदियां हैं जिनमें से पूर्वकथित को छोड़, कांडोचेटीज़ (Condochates,) इरनोबोआस और सोनस (Sonus) जलयात्रा योग्य हैं। फिर दूसरे लोग कहते हैं कि यह अपने झरने से भीषण गर्जन के साथ तुरंत निकल पड़ती है, और एक ढालुआं और पथरीली खाड़ी से उतर कर, समथल मैदान में पहुँचने पर तुरन्त एक झील में जा गिरती है, जहां से यह धीमी धारा से बहती है। चौड़ाई में अत्यंत सकीर्ण स्थान पर ८ मील और औसत में १०० स्टेडिया, तथा अपने मार्ग के अन्तिम भाग पर, जो गंगरिडीज़ के देश से हो कर गया है यह गहराई में २० फ़दम (१०० फ़ीट) से कभी कम नहीं है। *कलिङ्ग की राजधानी परथलिस (Parthalis) कहलाती है। ६०००० पैदल, १००० सवार, ७०० हाथी युद्धमण्डल में अपने राजा की रखवाली और रक्षा करते हैं।

---

* मूल के साधारण पाठ से गंगरिडीज़, कलिङ्ग की एक शाखा जान पड़ती है। और यही शुद्ध भी है। क्योंकि जनरल कनिंगहाम कहते हैं कि किसी किसी शिलालेख में त्रिकलिङ्ग पाया जाता है। कदाचित् त्रिकलिङ्ग नाम प्राचीन है क्योंकि प्लिनी 'मक्कोकलिङ्गे' और 'गंगरिडीज़ कलिङ्गे' को 'कलिङ्गे' से प्रथक जाति लिखते हैं और महाभारत में कलिङ्ग नाम तीन बार प्रथक प्रथक कर के लिखा है, और प्रत्येक बेर भिन्न भिन्न जातियों के साथ" (तथा विष्णुपुराण में भी) चूंकि यह 'त्रिकलिङ्ग' तेलिङ्गाना से मेल खा जाता है, यह सम्भव जान पड़ता है कि 'तेलिङ्गाना' वास्तव में 'त्रिकलिङ्ग' ही का विकृत रूप है।

क्योंकि अधिक सुसभ्य भारतीय समाजों में जीवन भिन्न भिन्न प्रकार के बहुत से व्यवसायों में बिताया जाता है। कोई भूमि जोतते हैं; कोई सिपाही हैं, कोई व्यापारी हैं; अत्यन्त उच्च और धनाढ्य लोग, राजकाज के प्रबन्ध में सम्मिलित होते हैं, न्याय विचारते हैं, और राजाओं के साथ सभा में बैठते हैं। एक पाँचवाँ वर्ग देश के प्रचलित दर्शनशास्त्र में लगा रहता है, जो कि प्रायः धर्म्म का रूप धारण किए हैं, और इस वर्ग के लोग अपने जीवन का अन्त सदैव जलती हुई चिता पर मृत्यु बुला के करते हैं * इन वर्गों के अतिरिक्त एक अर्द्ध-बर्बर जाति है जो सदैव शब्दों की वर्णन-शक्ति से बाहर कठिन परिश्रम के कार्य में लगी रहती है—अर्थात् अहेर करने और हाथी पालने में। वे इन पशुओं को जोतने और सवारी देने के काम में लगाते हैं, और उनका अपने चौपायों के झुंड का मुख्य अंश समझते हैं। वे उन्हे युद्ध में तथा अपने देश के निमित्त लड़ने में लगाते हैं। युद्ध के हेतु उन्हे चुनने में, उनकी अवस्था, बल और डील डौल पर ध्यान रक्खा जाता है।

---

* लूसियन (Lucian) ने पेरिग्रिनस (Peregrinos) की मृत्यु पर जो व्यंगपूर्ण वाक्य कहे हैं उनमें भी इस रीति का उल्लेख है "किन्तु इस मनुष्य के आग में कूद पड़ने का क्या अभिप्राय हो सकता है। परमेश्वर जाने, यह केवल यही दिखाने के लिये कि ब्राचमन लोगों की तरह यह किस प्रकार क्लेश सहन कर सकता है। Theogenis ने प्रसन्न हो कर उसकी तुलना उन्हीं से की है, मानों भरतवर्ष में मूर्खों और मिथ्याभिमानियों की सृष्टि ही नहीं है। किन्तु यदि वह उन की पूरी पूरी नक़ल करे तब न; क्योंकि सिकन्दर की नौकाओं का *माझी आनेसिक्रिटोस, जिसने कालनोस को भस्म होते हुए देखा था* कहना है कि वे अपने को अग्नि में कूद कर नहीं दग्ध करते, प्रत्युत जब चिता बन चुकती है तब वे चुप चाप उस के निकट खड़े हो जाते हैं, और अपने को धीरे धीरे सेंकते हैं; फिर चिता पर चढ़ कर वे भस्म हो जाते हैं और अपने आसन से तनिक भी नहीं डिगते।

गंगा में एक बड़ा द्वीप है जिसमें मोडो गलिङ्ग कहलाने वाली एक मात्र जाति का निवासस्थान है। इसके आगे मोडुबे (Modubœ) मोलिंडे (Molindœ) उबिरे (Uberœ) जिनके यहां इसी नाम का एक सुन्दर नगर है; गलमोड्रोयसी (Galmodroesi) प्रेटी (Preti) कलिस्से (Calissœ) ससुरि (Sasuri) पस्सले (Passalœ) कोलुबे (Colubœ) आक्सुले (Orxulœ) अबली (Abali) और तलुक्टे (Taluctoe) पड़ते हैं। *

---

* ये जातियां मुख्य कर गंगा के वाम तट और हिमालय के बीच के देशों में निवास करती थीं। गलमोड्रोयसी प्रेटी, कालिस्से, ससुरी और आक्सुले के विषय में तो कुछ ज्ञात नहीं है और न उनके नाम संस्कृत भाषा के किसी शब्द से मिलाए जा सकते हैं। मोडुबे तो निस्सन्देह मौतिब है जिनका वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण में और दूसरी अनार्य्य जातियों के प्रसंग में आया है, जोकि, जब ब्राह्मण लोग पहिले पहल इस देश में बसे थे, गंगा के उत्तर में बसते थे। 'मोलिंडे' पुराणों की सूची में 'मलद' के नाम से गिनाए गए हैं, किन्तु उनका और विशेष विवरण नहीं मिलता। 'उबरे' से 'भर' समझना चाहिए जो पूर्वकथित देश के मध्य भाग में आसाम तक फैली हुई एक जाति थी। इस नाम का उच्चारण भिन्न भिन्न ज़िलों में भिन्न रीति से होता है जैसे, बोर, मोरी, बर्रिया (Barriias) और भाड़िया, बरेया, बभोरी, भरई इत्यादि। यह जाति जो पहिले बहुत शक्ति-सम्पन्न थी, आज कल बस्ती की अत्यंत क्षुद्र जातियों में है। 'पसले' लोग पाञ्चाल के निवासी अनुमान किए गए हैं, जो दोआब का प्राचीन नाम था। 'कोलुबे', 'कौलूत' या 'कोलूत' से मिलता है—जिनका नाम रामायण के चौथे काण्ड में पश्चिम की जातियों की गणना में आया है, और वराह संहिता में भी पश्चिमोत्तर की जातियों की सूची में इनका नाम पाया जाता है, तथा 'मुद्राराक्षस' नाटक में भी जिसका नायक प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त है वे उत्तर में यमुना के तट के सन्निकट कहीं बसते थे।

इनका राजा ५०००० पैदल, ४००० सवार, और ४०० हाथी, सुसज्जित रखता है। इसके उपरान्त + अण्डरे (Andaroe) इनसे भी बढ़कर शक्तिशाली जाति है जिसके पास असंख्य ग्राम, और दीवारों और मीनारों से रक्षित तीस नगर हैं, और जो अपने राजा के १००००० पैदल, २००० सवार, और १००० हाथी देती है।

सोना दरदे Dardtœ के बीच और चांदी * Setæ सेटे के बीच बहुत अधिक होती है।

सातवीं शताब्दी के मध्य में प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसंग ने उन्हें देखा था, जो उनका नाम क्यु-लु-टो (Kiu-lu-to) लिखता है। यूल (Yule) साहब पस्साले को तिरहुत के दक्षिण-पश्चिम बतलाते हैं, और कोलुवे को (Kandochatis) कांडोकेटेज़ (गंडकी) के तट पर गोरखपुर से उत्तर पूर्व और 'सारन' से उत्तर पश्चिम। 'अबली' कदाचित् दक्षिण बिहार की ग्वाल वा हलवाई न हों। 'तलुक्ते' महाभारत में वर्णित ताम्रलिप्त राज्य के निवासी हैं। सीलोन के बौद्धों के ग्रंथों में इनका नाम 'तमलित्ति' लिखा है जो कि आज कल के तमलूक से मेल खा जाता है। प्लिनी का दिया हुआ नाम इन दोनों के बीच में है। 'तमलूक' कलकत्ता से दक्षिण पश्चिम है और सीधे मार्ग से ३५ मील पड़ता है। प्राचीन काल में यह गंगा तटस्थ भारत और सीलोन के बीच व्यापार का मुख्य केन्द्र था।

+ अंडरे (Andaroe) तुरन्त संस्कृत अन्ध्र से मिलाए जा सकते हैं जो बड़े शक्तिमान थे और आरम्भ में गोदावरी और कृष्णानदी के बीच दक्खिन में बसे थे; पर मेगास्थिनीज के समय के पहिले ही वे उत्तर में नर्मदा तक फैल गए थे। Ind. Ant Vol. IV. General Cunningham's Ancient. Geog of India pp. 527–530.

* 'सेटे' संस्कृत भूगोल के 'साट' या 'साट[illegible]

किन्तु 'प्रेसिआई' शक्ति और प्रताप में और समस्त दूसरे लोगों से बढ़े चढ़े हैं; न कि केवल इसी ओर वरन् यह कहना चाहिए कि समस्त भारतवर्ष में; उनकी राजधानी एक बहुत बड़ा और धनाढ्य नगर 'पालिबोथ्रा' है, जिसके अनुसार कुछ लोग निवासियों ही को 'पालीबोथ्री' कहते हैं—यहां तक कि गंगातटस्थ समस्त देश ही को। उनका राजा अपने अधिकार में ६००००० पैदल, ३०००० सवार और ६०००० हाथी रखता है; जिससे कुछ उसकी सम्पत्ति के विस्तार का अनुमान बंध सकता है।

इनके उपरान्त, किन्तु अधिक अन्तर्भाग में, 'मोनिडीज़' (Monedés) और 'सुअरी' (Suari) † लोग हैं जिनके देश में 'मल्योस' (Maleus) पर्वत है, जिस पर छ छ महीने के अन्तर पर छाया जाड़े में उत्तराभिमुख और गरमी में दक्षिण की ओर पड़ती है। * बेटन (Bateon) कहता है कि इन भागों में उत्तरी ध्रुव वर्ष में केवल एक बार दिखाई देता है, सो भी केवल १५ दिन के लिये; और मेगास्थिनीज़ कहता है कि यही बात भारतवर्ष के कई भागों में घटित होती है दक्षिणी ध्रुव भारतवासियों द्वारा द्रमस (Dramasa) कहलाता है।

वे 'दरदस' के पड़ोसी हैं [यूल के अनुसार वे संस्कृत के 'सेक' हैं; और वे उन्हें हाजपुर के निकट 'बनास' के तट पर अजमेर दक्षिण पूर्व बताते हैं।]

† 'मोनेडीज' या 'मंडी' को यूल साहब छोटा नागपुर के द० पू ब्राह्मणी के किनारे गंगपुर के पास बतलाते हैं। लैसन उन्हें महानदी के दक्षिण सोनपुर के पास बतलाते हैं जहां पर यूल के अनुसार 'सुअरी' व 'सबेर' जो संस्कृत ग्रन्थकारों का 'सावर' है, स्थित है। लैसन इन्हें सोनपुर और सिंहभूम के बीच बतलाते हैं।

* यह वास्तव में केवल भूमध्य रेखा पर हो सकता है जहां से कि भारतवर्ष का दक्षिणी छोर ५०० मील के लगभग है।

ओमेनीज़ नदी * पालिबोथ्री से होकर मेथोरा (Methora) और केरिसोबोरा (Carisobora) नगरों के बीच गंगा में गिरती है। उन भागों में जो गंगा के दक्षिण पड़ते हैं निवासी लोग जो पहिले ही से साँवले होते हैं, सूर्य्य से गाढ़ा रंग प्राप्त करते हैं यद्यपि इथियोपियनों (Ethiopians) की भाँति झुलस कर काले नहीं होजाते। जितना ही वे

---

* 'पालीबोथ्री' से यहां उस राज्य के निवासियों को समझना चाहिए जिसकी राजधानी 'पालीबोथ्रा' थी, न कि केवल उस नगर के निवासियों को, जैसा रेनिल और दूसरों ने अनुमान किया था और उनकी स्थिति को गंगा और यमुना के संगम पर निर्धारित किया था। मेथोरा तो सहज ही में 'मथुरा' से मिल जाता है। 'केरिसोबोरा' का पाठान्तर (Chrysoban) क्राइसोबन, सिरिसोबोरका (Cyrisoborca), क्लेसोबोरास (Cleisoboras) भी है। जेनरल कनिंहाम कहते हैं, "इस नगर का पता अब तक नहीं लगा है; किन्तु मुझे यह निश्चय होता है कि यह अवश्य 'वृन्दावन' है जो मथुरा से १६ मील उत्तर है।........। इस स्थान का प्राचीन नाम 'कलिकावर्त्त' है। लैटिन नाम (Clisobora) क्लिसोबोरा भिन्न भिन्न प्रतियों में 'केरिसोबोरा' और सिरिसोबोरका भी लिखा है, जिससे मैं समझता हूँ कि आरम्भ में उच्चारण केलिसोबोरका (Kalisoborka) रहा होगा जो कुछ फेर फार के साथ, केलिकोबारटा या कालिकावर्त्त हो सकता है"—Ancient Geography of India p. 375। यह एरियन का 'क्लेसोबोरा' है जिसको मूल साहब 'बटेसर' में बतलाते हैं और प्रो॰ लैसन आगरे में, जिसे वे संस्कृत का 'कृष्णपुर' बना डालते हैं। Wilkins (Asiatic Res. Vol V. p. 270) कहते हैं कि क्लिसोबोरा आजकल मुसलमानों द्वारा 'मूगूनगर' और हिन्दुओं द्वारा 'कालिसपुर' कहाजाता है" । Indian Ant. Vol VI, 249 note.

इंडस के निकट पड़ते उतनाही उनकी रंगत सूर्य के प्रभाव को प्रगट करता है।

इंडस 'प्रेसियाई' की सिमा को घेरे है, जिसकी पर्व्वतस्थलि पर पैानों का निवास है। * आर्टेमिडोरस (Artemidorus) दोनों नदियों के बीच के अन्तर को १२१ मील स्थिर करता है।

(२३) इंडस जो निवासियों द्वारा सिंडस कही जाती है काकेसस पर्व्वत की उस शाखा में जो पैरोपैमिसस (Paro-pamisus) कहलाती है, सूर्य्योदय के अभिमुख उद्गमों से निकल कर, १६ नदियां प्राप्त करती हैं जिनमें सब से प्रख्यात (१) हाइडास्पीस, जिसकी चार सहायक हैं; केन्ट्रा † Cantabra, जिसकी तीन हैं; असेसिनीज़ (Acesines) और Hypasis (२) हाइपेसिस, जो दोनों जलयात्रा योग्य हैं, किन्तु इस पर भी पानी की आमद बहुत न होने से, यह किसी स्थान पर पचास स्टेडिया से अधिक चौड़ी वा पंद्रह कदम से अधिक गहरी नहीं है। यह एक अत्यंत बड़ा टापू बनाती है, जो प्रेसियन Prasian कहलाता है; तथा एक और उससे छोटा जो पटेल Patale कहलाता है ‡। इसकी धारा,

---

* Ephesus इफिसस एक यूनानी भूगोलवेत्ता है, जिसका समय लगभग १०० ई० पू० है। भूगोल पर उसका एक अमूल्य ग्रंथ 'पेरिप्लस' प्राचीन ग्रंथकारों द्वारा बहुत उद्धृत किया गया है, किन्तु कुछ खण्डों को छोड यह ग्रंथ पूर्ण नहीं मिलता।

(१) हाइडास्पिस=वितस्ता वा झेलम। (२) हाइपेसिस छोटा रूपान्तर 'हाइपेनिस,' बिबेसिस=संस्कृत 'विपाशा,' आधुनिक व्यास।

† 'चन्द्रभागा' वा 'अकेसिनीज़' जो आजकल चनाब कहलाती है।

‡ 'यूल' 'प्रेसिएन' को रोहड़ी से हैदराबाद तक के भूमिखण्ड से, तथा सिन्ध के डेल्टा से मिलाते हैं—

Ind. Ant.

औ अत्यन्त घट कर आँकने से १२४० मीलें तक जल; यात्रा योग्य है, पश्चिम की ओर घूमती है मानों थोड़ा बहुत सूर्य्य के मार्ग का अनुकरण करती है, और तब समुद्र में जा गिरती है । गंगा के मुहाने से इस नदी तक तटरेखा की माप में वैसीही रक्खूँगा जैसी साधारणतः की जाती है, यद्यपि कोई भी लेखा एक दूसरे से मेल नहीं खाता । गंगा के मुहाने से 'कलिङ्गन रास' (Cape Calingon) और 'डंडगुल' नगर तक ६२५ मील *; 'त्रोपिन' (Tropina) † तक १२२५ मील; पेरिमुल की रास ‡ (Cape of Permula) तक, जहाँ भारत में व्यापार की सब से बड़ी मंडी है, ७५० मील; ऊपर कहे हुए 'पटल' (Patal) के द्वीप के नगर तक ६२० मील ।

---

* दूरी और नाम दोनों से 'कोरिङ्गा' का बड़ा बन्दरगाह 'कोरिङ्गन' की रास प्रतीत होती है, जो कि गोदावरी नदी के मुहाने पर एक निकले हुए भूखण्ड पर स्थित है । 'डंडगुद' 'डंडगुल' नगर को मैं बौद्ध ग्रन्थों का 'दान्तपुर' समझता हूं, जिसे कलिङ्ग देश की हम राजधानी मान कर 'राजमहेन्द्री' में ठहरा सकते हैं, जो कोरिङ्गा से केवल ३० मील उ० पू० है । यूनानी Γ और Π अधिक समान होने से मैं सम्भव समझता हू कि यूनानी नाम 'डंडपुल' रहा हो, जो 'दान्तपुर' से मिल जाता है। किन्तु इससे जान पड़ता है कि बुद्ध का दान्त (दाँत) कलिङ्ग में प्लिनी के काल ही में गाड़ा गया था, यह बौद्ध ग्रन्थो के इन वाक्यों से भी दृढ़ होता है कि बुद्ध का बायाँ दाँत कलिङ्ग में उनके मरने के थोड़े काल उपरान्त ही लाया गया जहा पर वह उस समय के राजा ब्रह्मदत्त द्वारा समाधिस्थ किया गया ।—Cunningham Geog. p. 518.

† ['त्रोपिन' कोचिन के सामने 'त्रिपोन्तरी' वा 'तिरुपन्तर' को लक्षित करता है—Int. And.] दी हुई दूरी गंगा के मुहाने से नापी गई है, कलिङ्गन रास से नहीं ।

‡ यह रास 'परिमुला' वा 'परिमुदा' द्वीप की निकली हुई नोक है जो अब बम्बई के सालसेटी (Salsette) का द्वीप कहलाता है ।

इंडस और इमोमनीज़ (Iomanês) के बीच की पहाड़ी जातियाँ ये हैं—सेसी (Cesi), सेत्रियोनी (Cetriboni), जो जंगलों में रहते हैं; फिर मेगाले (Megallæ) जिनका राजा ५०० हाथी, तथा अज्ञात बल के पैदल 'सिपाही' और घोड़ों का स्वामी है; क्रिसेई (Chrysei) परसङ्गे (Parasangæ) तथा असङ्गे (Asangæ) * जहां विख्यात बाघ बहुत हैं । सुसज्जित सेना के अन्तरगत ३०००० पैदल, ३०० हाथी और ८०० घोड़े हैं । ये इंडस से बंधे हैं तथा पर्वतों और रेगिस्तानों के मण्डल से ६२५ मील की दूरी में घिरे हैं । * रेगिस्तान के नीचे 'दरी' (Dari)

---

* प्लिनी, इंडस और गंगा के बेसिन का साधारण विवरण देकर, यहा पर उन जातियों को गिनाता है जो भारत के उत्तर में निवास करती थीं । नाम ऊटपटाग हैं, किन्तु लैसन ने इनमें से दो एक को और सें० मार्टिन ने बहुतेरों को मिलाया है । सूची में वर्णित पहिली जाति यमुना से लेकर नर्मदा के मुहाने के पास पश्चिमी किनारे तक फैली थी । 'सेसी' (Cesi) से 'खोसा' वा 'खसिया' की बड़ी जाति लक्षित होती है, जिसने अत्यंत प्राचीन काल से गुजरात, लोअर सिन्ध तथा यमुना के मध्य भ्रमणशील जीवन बिताया है । 'सेत्रिबोनी' का नाम केत्रिवनी (क्षत्रियनेय) का विकृतरूप जान पड़ता है । अतएव ये मनु की गिनाई हुई म्लेच्छ जातियों में (१-१०-१२) से 'खात्री' की एक शाखा कदाचित् हो । 'मेगाल' तो संस्कृत पुस्तकों में वर्णित 'मावेल' हैं जिनका निवास यमुना के पश्चिम लिखा है । 'क्रिसेई' कदाचित् पौराणिक सूची के 'क्रौञ्च' हों (विष्णुपुराण) । इनकी तथा पिछली दो जातियों की निवासभूमि 'रन' के उत्तर लोअर इंडस (सिन्ध) और और अरावली श्रेणी के मध्य में रही होगी ।

* वा असगी । प्रो० लैसन सन्देह के साथ जोधपुर के आस पास बताते हैं—Ed Int Ant

और सुरे (Sure) हैं, फिर १८७ मील तक रेगिस्तान है। यह रेगिस्तान उपजाऊ भूमि को ठीक वैसे ही घेरे हैं जैसे समुद्र द्वीप को घेर रहता है। * इस रेगिस्तानों के नीचे हम मास्टिकारे (Malticore,) सिंघे (Singhae) मरोहे (Marohae) रारुन (Rarun gae,) मोरुनी, को पाते हैं। ये उन पहाड़ियों पर वसते हैं जो अखण्डित श्रृंखला में महासागर के तट के समानान्तर चली गई हैं। ये स्वतंत्र हैं और कोई राजा नहीं रखते, पर्वत की ऊँचाई पर बसते हैं जिन पर उन्होंने बहुत से नगर बसाए हैं। † इसके आगे

---

* 'थार' लोग अब तक 'थर' के किनारे तथा सिन्ध की घाटी के समकक्ष भागों में बसते हैं। हुएन्त्सांग कच्छ की खाड़ी के निचले छोर पर एक 'दर' की भूमि का उल्लेख करता है जो ठीक प्लिनी के दिए हुए ठिकाने से मिल जाता है। सुरे, 'सेरक' और 'सूर' नाम का अवशेष 'सौर' में पाया जाता है जो लोअर सिन्ध के किनारे बसी हुई एक जाति है— यह हरिवंश के 'सौरवीर' की आधुनिक सन्तति है।

लेसन इन्हें सन्देह के साथ 'लोनी' के किनारे सिन्द्री के समीप बताते हैं, किन्तु यूल साहब वहां बोलिंगे— सरकुन 'भौलिंग'— का स्थान बताते हैं।— Ind. Ant

† ये जातियां अवश्य 'कच्छ' में बसती थीं। मास्टिकोरे के नाम ने विशेष ध्यान आकर्षित किया क्योंकि वह 'मत्तिखोर' से मिल जाता है जिसको टीशियास ने भारतवर्ष का एक मनुष्यभक्षी जीव कहा है। अतएव 'मास्टिकोरे' मनुष्यभक्षियों की एक जाति रही होगी। किन्तु M de St Martin इस बात को नहीं मानते। 'सिंघे' आज-कल के अमरकोट के 'सिघो' हैं (जिन्हें मरमर्डो ने 'साग' कहा है) जो एक प्राचीन राजपूत शाखा 'सिंघ र' के वंशज हैं। 'मरोहे' कदाचित् 'वराहसंहिता' की सूची के 'मरुह' हैं। 'वराहसंहिता' प्लिनी के काल से साढे चार सौ वर्ष पीछे की है। बीच में वे स्थानच्युत हो गए, पर स्थान

नेरिए (Nareœ) हैं जो भारतीय पर्वतों में सब से ऊँचे केपिटेलिया* (Capitalia) द्वारा घिरे हैं।

च्युत होना उन दिनों कोई असाधारण बात न थी। ऐसे ही 'रत्ती' कदाचित् "राथी" के पूर्वज रहे हों जो अब सतलज के किनारे दिल्ली के आस पास मिलते हैं।

* केपिटेलिया निस्सन्देह पवित्र अर्बुद गिरि वा आबू पहाड़ है जो ६९०० फीट ऊँचा और आरावली श्रेणी के सब शिखरों से उन्नत है। 'नेरिए' नाम से 'नैयर, की ओर ध्यान जाता है जिसको राजपूत इतिहास रेगिस्तान का एक उत्तरी खण्ड बताते हैं (Tod's Rajasthan II 211)। यही से० मार्टिन भी कहते हैं। किन्तु जेनरल कनिंगहाम के अनुसार ये लोग 'सरुई' के हैं, क्यों कि 'नर' और 'सर' दोनों नरकट के पर्य्याय हैं और 'सरुई' का देश अब तक सरकंडे के तीरों के लिये प्रसिद्ध है। यही ग्रंथकार इस कथन को कि सोने और चाँदी की बहुत सी खानें इस पर्वत के दूसरे पार्श्व में निकलती हैं अपने इस सिद्धान्त के पक्ष में व्यवहृत करता है कि भारतवर्ष ही बाइबिल का ओफिर (Ophir) है, जहा से सुलेमान के समय में टेरियन (Tyrian) नौकाएं बहुत सा सोना लालचन्दन और बहुमूल्य पत्थर ले गई थीं (1 Kings x11)। इनकी युक्ति यह है— "प्लिनी की सूची में अन्तिम नाम वेरिटेटे (Varetatæ) है जिसको मैं दो अक्षरों का फेरफार करके (Vataretæ) वेटरटे कर देता हू। यह उच्चारण 'स्वरटेरटे' (Svarataratæ) के भिन्न भिन्न पाठान्तरों से भी दृढ होता है। यह अपंत सम्भव है कि 'स्वरटेरटे' 'सौराष्ट्र' को प्रगट करने के लिये व्यवहृत हुआ हो। प्रसिद्ध वराहमिहिर 'सौराष्ट्र' और 'बादर' का, भारतवर्ष की द० प० की जातियों के प्रसङ्ग में, एक साथ उल्लेख करता है (बृहत्संहिता)। अतएव ये 'बादर' अवश्य ही

'बदरी' के निवासी रहे होंगे। मैं समझता हूं कि 'बदरी' का नाम उस भूभाग को सूचित करता है जहां बदरी (बेर) के पेड बहुत हों। ये पेड दक्षिण राजपूताने में अधिक मिलते हैं। इसी कारण मैं इसी स्थान के आसपास प्राचीन 'सौवीर' को भी समझता हू क्योंकि 'सौवीर' बदरी का दूसरा नाम है। 'काफ्टि' आज कल भी भारतवर्ष का (Coptic) काफ्टिक नाम है; किन्तु यह नाम आरम्भ में हिन्दुस्थान के उसी किनारे का रहा होगा जहां पश्चिम के व्यापारी बहुत आते थे। इसमें बहुत कम सन्देह है कि यह खंभात की खाडी ही थी जो अत्यत प्राचीन काल से भारतवर्ष और पश्चिम के बीच व्यापार की मुख्य जगह थी। यूनानी इतिहास के समस्त काल में यह व्यापार बरिगजा (Barygaza) वा भडोच के प्रसिद्ध नगर के सर्वथा आधीन था जो नर्मदा नदी के मुहाने पर है। चौथी शताब्दी के लगभग उसका कुछ अश 'वल्लभी' की नई राजधानी में मिल गया। माध्यमिक काल में इस व्यापार में खाडी के सिरे पर खभात नगर भी सम्मिलित हुआ; और आज कल ताप्ती के मुहाने पर सूरत नगर ही इसका मुख्य केन्द्र है। यदि 'सौवीर' नाम बेर के पेडों ही के कारण पडा है तो मुझे सम्भव जान पड़ता है कि यह 'बदरी' वा 'ईदर' के प्रान्त का दूसरा नाम रहा होगा, जो 'खम्भात की खाड़ी' के ऊपर है। वास्तव मे, रुद्रदाम के अनुसार 'सौवीर को इसी ठिकाने पर होना भी चाहिए, जो 'सिन्धु- सौवीर' को सौराष्ट्र और भारुकच्छ के थोडे ही आगे, तथा 'कुक्कुर अपरन्त और 'निषाद' के थोडे ही इधर, बतलाता है। (gour Bo Br R As. Soc ऽ11 1°0) । इस मन्तव्य के अनुसार 'सौवीर' अवश्य 'सौराष्ट्र' और भडोच के उत्तर तथा 'निषाद' के दक्षिण रहा होगा, अर्थात्, जैसा मैं ने कहा है, आबू पहाड़ के आसपास ही होना। 'सौवीर' का यही ठिकाना विष्णुपुराण में भी लिखा है— Anc Geog of India

इस पर्वत के दूसरे पार्श्व के निवासी सोने और चाँदी की विस्तृत खानें खोदते हैं। इसके उपरान्त * ओरेटुरे (Oratuiæ) हैं, जिनके राजा के पास केवल दश हाथी हैं, यद्यपि उसके पास पैदल सिपाहियों की बड़ी प्रबल सेना है। फिर इसके अनन्तर वरेटेट (Varetatæ) हैं, जो एसे राजा की प्रजा है जो हाथी नहीं रखता, वरन् पूर्ण रीति से अपने घोड़े और पैदल पर भरोसा रखता है। फिर ओडम्बेरी (Otumbœiæ) हैं; † सलवस्ट्री (Salabastræ) हैं, § होरेटी (Horatæ) है जिनके यहा एक सुन्दर नगर देस दलदलों

---

pp. 496–497 । See also 560–562 of the same work।

* आरेट्रे से अभिप्राय राठौर से है, जिन्हों ने मुसल्मानी विजय के पहिले भारतीय इतिहास में बड़े बड़े काम किए हैं। वे यद्यपि, गंगा के समीप आ बसे हैं, पर अपने पूर्वजों की भूमि अजमेर समझते हैं जो अरावली की पूर्वी छोर पर है।

† ओडम्बेरी का नाम सस्कृत साहित्य में मिलता है क्योंकि पाणिनी उदम्बरी उस देश को बतलाते हैं जहा प्राचीन आख्यानों में प्रसिद्ध 'सल्व' जाति के लोग बसते थे जो प्लिनी के सल्बस्ट्री से मिल जाते हैं। उसने उनका नाम जो थोडा बढा कर लिखा है वह केवल संस्कृत 'वस्त्य' को उसके साथ सयुक्त कर देने के कारण से, 'उदम्बरी' प्रान्त कच्छ में था। [प्रो० लैसन सलबस्ट्री को जोधपुर और सरस्वती के मुहाने के मध्य स्थिर करते हैं, और 'होरेटी' को खम्भात की खाडी के सिरे पर। 'आटोमल' का स्थान वे खम्भात ही बताते हैं। यूल सेन-ड्रबटीज (Sandrabatis) को उत्तरी गुजरात में चन्द्रावती के पास बनाते हैं, किन्तु लैसन इन्हें टोंक के पास बनास के किनारे बताते हैं—

§ 'होरेटी' 'सोराठ' का अशुद्ध अवतरण है जो संस्कृत सौराष्ट्र का भ्रष्ट रूप है। अतएव 'होरेटी' उस देश के निवासी थे जिसका पेरिप्लस (Periplus) और प्लिनी में सुरस्ट्रेना (Surastrana) नाम लिखा है—अर्थात् गुजरात् ओरोथ (Orrhoth) को कासमास ने भारतवर्ष के

सोलोब्रियसी (Solobriasæ) ओलोस्ट्री (Olostræ,) * हैं, जो पटेले (Patele) द्वीप के सन्निकट हैं जिसके अन्तिम तट से कास्पियन (Caspian) द्वार तक की दूरी १९२५ मील कही जाती है। †

---

* इस सूची में दिए हुए नाम अरावली पर्वत और सिन्ध नदी के बीच की जातियों को सूचित करते हैं। इन में से बहुतों का उल्लेख तो राजपूतों के इतिहास में है जिन्हें M. De. St. Martin इस प्रकार बताते हैं:— "सिरियनी" लोग 'सुरियानी' हैं जो सिन्ध नदी के सन्निकट बक्कर के आसपास सदा से बसते आए हैं। 'डेरंगी' राजपूतों की एक शाखा 'झाड़ेजा' का लेटिन नाम करण है। ये झाड़ेजा आजकल कच्छ में बसे हैं (Tod's Rajasthan Vol. I. P. 86) । 'भुज़ी' बुद्द को सूचित करते हैं जो इसी 'झाड़ेजा' की एक पुरानी शाखा है। गोजियेरे (पाठान्तर Gogarasi गोगरसी, गोगरे Gogarae) 'कोकरी' हैं, जो आज दिन घर या लोअर सतलज के किनारे बसे हैं। 'उम्री' से 'उम्रनी' का लक्ष्य होता है, और 'नेरिए' से कदाचित् 'न्हरोनी' का जो यद्यपि आजकल बिलूचिस्तान में बसते हैं तथापि प्राचीन काल में उनका निवास सिन्ध नदी के पूर्व ही था। 'नुबटे' जिनकी सिन्ध की प्रचलित गाथाओं में बड़ी चर्चा है, कदाचित् 'नोवुन्दी' हों, और 'कोकोण्टी' तो निस्सन्देह ही महाभारत में उत्तर पश्चिम की जातियों के प्रसंग में वर्णित 'कोकनद' हैं— पर बकनन साहब गोरखपूर की एक ककंद जाति की ओर इङ्गित करते हैं।

† दो नाके थे जो कास्पियन द्वार के नाम से विख्यात थे। एक अलबेनिया में था, और काकेसस की एक शाखा से बना था जो कास्पियन सागर में दूर तक चली गई थी। दूसरा जिसका यहां प्लिनी उल्लेख करता है उत्तर-पश्चिमी एशिया से लेकर फारस के उत्तर-पूर्व प्रान्तों तक एक संकीर्ण दरा (Pass) था। एरियन के अनुसार

फिर उस क्रम के अनुसार जिस पर चलना सहज है, इनके उपरान्त इंडस सिन्ध का और 'अमेर्ति' (Amatæ,) बोलिङ्गी (Bolingæ,) 'गल्लितलुती' (Gallitalutæ,) 'दिमुरी,(Dimuri,)'मेगरी' (Megari,) आर्डबी (Ordabæ,) 'मेसी' (Mesæ,) पड़ते हैं; इनके अनन्तर 'उरी' (Uri) और 'सिलेनी' * हैं। यह इसके आगे ही २५० मील तक फैले हुए रेगिस्तान पड़ते हैं । इन्हें पार करने पर हमें

Anab ii 20) 'कासियन द्वार' मिडिया के 'रहगई' नगर से थोड़ी ही दूर है। रहगई का ठिकाना आज कल तेहरान (फ़ारस में) से एक वा दो मील दक्षिण रहा के खंडहरों में मिलता है। यह दर्रा (Pass) प्राचीन भूगोल में बड़ाही प्रसिद्ध था और वहीं से बहुत सी याम्योत्तर (meridians) रेखाएं नापी जाती थीं। स्ट्रेबो कहता है कि भारतवर्ष की अन्तिम छोर (कन्याकुमारी) से वह १४००० स्टेडिया है।

* पाणिनि के सूत्रों में 'भौलिङ्गी' का एक देश कहा है जिसमें 'साल्व' जाति की एक शाखा निवास करती थी, इसी लक्ष पर M De, St Martin ने 'बोलिङ्गी' को अरावली पर्वत के पश्चिमी उतार पर स्थिर किया है। टालमी भी बोलिङ्गी को यहां बताता है। पंजाब के मद्रभुजिंग (विष्णुपुराण) कदाचित् इसी जाति की एक शाखा थे। इसी ग्रंथकार ने 'गल्लितलुती' को 'गहलत' वा 'गहलोत' से मिलाया है। डिमुरी को 'डुमरा' लोगों से जो सिन्ध के किनारे से उत्तर भारत की ओर जा बसे हैं; 'मेगरी' का राजपूत इतिहासों के 'मोकर' से जिन के नाम का अवशेष कदाचित् सिन्ध के 'मेहर', और पूर्वीय बिलूचिस्तान के 'मेवारी'में पाया जाता है; 'मेसी' को शिकारपूर और मिट्ठनकोट के बीच बसनेवाले 'मर्जारा' लोगों से; 'उर' को वहा के 'हौरा' लोगों से —जो 'हुरे' के नाम से राजपूतों के छत्तीस राजकुलों में से एक हैं। उसी जाति के 'सुलाल' लोग कदाचित् 'सिलेनी' हों, जिनका प्लिनी उरी के साथ उल्लेख करता है।

आगङ्गा (Organgæ,) अबमोर्टी (Abaortæ,) सुवेर्टी, मिलते हैं, और इनके उपरान्त उतने ही विस्तृत रेगिस्तान जितने कि पहिले के। फिर सेरोफ़ेसिस (Sarophages,) सार्गी (Sorgæ,) बरोमेटी (Bormat) तथा उम्ब्रिट्टी (Umbrittae) पड़ते हैं, जो बारह जातियों से संयुक्त हैं जिनके प्रत्येक के पास दो नगर हैं; और असेनी (Aseni,) जिन के पास तीन नगर हैं *। उनकी राजधानी ब्युसिफला (Bucephala) है, जो उस स्थान पर बनी है जहां सिकन्दर का उसीनाम का प्रसिद्ध घोड़ा गाड़ा गया था †। इसके अनन्तर काकेसस् के नीचे बसे हुए 'सालिपडी

---

* इन जातियों का निवासस्थान उस स्थान से उत्तर रहा होगा जहां सिन्ध के साथ पंजाब की नदियों का संयुक्त धारा का सङ्गम है। ये उटपटांग हैं और उनके नाम का पता ठीक ठीक नहीं चलता। 'सिबेरी' तो अवश्यही महाभारत के सौवीर हैं, और जैसा कि उनके नाम के साथ सिन्ध का सम्बन्ध सूचित होता है, ये उसी नदी के तट पर बसते थे। 'अबओर्टी' से कदाचित् अफ़ग़ानों की 'अफ़रीदी' जाति से अभिप्राय हो, और 'सरोफ़ेजिस' से उसी समुदाय के रामान वा 'सरवानी' से। 'उम्ब्रिट्टी' और 'असेनी' हमें नदी के पूर्व ले जाते हैं। 'उम्ब्रिट्टी' तो जान पड़ता है कि सिकन्दर के इतिहासकारों के 'अम्बस्टी', और संस्कृत ग्रन्थों के 'अम्बस्थ' हैं जो अकेसिनीज़ (चेनाब) के आसपास रहते थे।

† सिकन्दर ने हाइडास्पिस (झेलम) के किनारे के महा संग्राम के अनन्तर, जिसमें उसने पोरस को हराया था, दो नगरों की नींव दी — एक ब्यूसिफ़ेला (Bucephala) वा ब्यूकिफालिया जो उसके प्रसिद्ध घोड़े (ब्यूसिफ़ेलस) के नाम पर बसाया गया, दूसरा 'निकेइया' (Nikaia) जो उसकी विजय के उपलक्ष में निर्मित हुआ। यह तो भली भांति विदित है कि 'निकेइया' युद्धस्थल ही पर निर्मित हुआ था अतएव उसका ठिकाना हाइडास्पिस के बाएं किनारे पर रहा होगा।

(Soleadæ) और सोन्ड्री (Sondræ)आदि पहाड़ी लोग हैं, और यदि हम इंडस के दूसरे किनारे पर उतर जाते हैं, और उसका मार्ग पकड़े नीचे को ओर जाते हैं तो हम 'समरब्रिई' (Samarabriæ) सम्बुसेनी (Sambruseni,) बिसम्ब्रिटी (Bisambritœ) ओसियाई (Osii,) अंटिक्सेनी(Antixeni)तथा एक प्रसिद्ध नगर युक्त टैक्सिली (Taxillæ) मिलते हैं* । इसके उपरान्त अमन्द् नाम से परिचित देश का एक चौरस खंड पड़ता है, जिसके ऊपर जातियां संख्या में चार हैं—पिउकोलैटी(Peucolaitae)असैंगलिटी (Arsagalitae) जिरेटी (Geretae,) और असोई (Asoi)

कदाचित् उस स्थान पर जहां आज कल 'माग' है । ब्यूसिफेला का पता बताना इतना सहज नहीं है । प्लूटार्क और प्लिनी के अनुसार यह हाईडास्पिस के समीप उस स्थान पर था जहां ब्यूकिफेलस गाड़ा गया था । यदि यह मान लिया जाय तो उसे नदी के उसी पार्श्व में होना चाहिये जिसमें 'निकेइया' स्थित था । किन्तु स्ट्रैबो तथा और दूसरे ग्रंथकार उसे नदी के दूसरे तट पर बताते हैं । स्ट्रैबो उसे उस स्थान पर स्थिर करता है जहां से सिकन्दर नदी पार हुआ था, और एरियन कहता है कि वह उस भूभाग पर निर्मित हुआ था जहां उसके डेरे पड़े थे । जनरल कनिंगहाम उसे जलालपुर में स्थिर करते हैं जो झेलम से तीस मील ऊपर है और बर्नेस, जनरल कोर्ट तथा जनरल अब्बट इसका अनुमोदन करते हैं । जलालपुर 'दिलावर' से लगभग १० मील के है जहां से, ज० कनिंगहाम के मतानुसार, सिकन्दर ने नदी को पार किया था ।

* 'सोलिएडी' और 'सोन्ड्री' का पता नहीं चलता, और उन जातियों में से जो सिन्ध नदी के पूर्व स्थित की गई हैं केवल 'टैक्सिली' ही ज्ञात है । उनकी राजधानी विख्यात टैक्सिला थी, जिसको सिकन्दर ने निरीक्षण किया था । ज०कनिंगहाम कहते हैं "इस नगर का ठिकाना

अब तक अज्ञात है, एक तो प्लिनी की दी हुई अशुद्ध दूरी के कारण और दूसरे उन विस्तृत खडहरों के विषय में जानकारी न होने के कारण जो 'शाहढेरी' के पास अब तक बने हैं। प्लिनी की समस्त प्रतियां यह कहने में सहमत हैं कि टैक्सिला, पिउकोलैटिस (Peucolaitis) नह हस्तनगर से केवल ६० रोमन अथवा ५५ अंग्रेजी मील पर है, जिससे उसका ठिकाना हसन-अब्दाल के पश्चिम हारो नदी के तट पर कहीं स्थिर होता है जो सिन्ध नदी से दो दिन की राह है। किन्तु चीनी परिव्राजक के यात्रा विवरण उसे सिन्ध नदी के पूर्व तीन दिन की राह, अथवा काल का-सराय के पड़ोस में, बताने में सहमत हैं। अतएव वह उसका ठिकाना शाहढेरी के निकट (जो उपरोक्त सराय से एक मील उ० पू० है) स्तूप, मठ और मन्दिरों से मंडित एक सुदृढ़ नगर के खंडहरों में निर्धारित करता है। इस स्थान से हस्तनगर ७४ अंग्रेज़ी मील है अथवा प्लिनी के अटकल से १९ मील अधिक। टैक्सिला संस्कृत का 'तक्ष-शिला' है, जिसका पाली रूप तखसिला है जिससे यूनानी रूप लिया गया है। (Anc Geog of Ind P 104)

† चूंकि 'अमन्द' नाम नितान्त अज्ञात है, M. De St. Martin बिना आगा पीछा किए उसका शुद्ध नाम गन्धार इस आधार पर बताते हैं कि अमन्द की निर्वाचित भूमि गन्धार से मिल जाती है। पिउकोलिटी जिस देश में बसते थे वह इसी गन्धार का एक भाग था जैसा कि और ग्रन्थकारों से हमें विदित होता है। जिरेटी तो बिना किसी सन्देह का एरियन का गौरेई (Gouraoi) है, और 'असेई' कदाचित् अस्पसिआई से मिलते हैं, जिन्हें स्ट्रैबो ने 'हिप्पसिआई' या 'पसिआई' लिखा है। 'अर्सगालिटी' का नाम तो केवल प्लिनी ही लेता है। यह नाम, जान पड़ता है कि एक ही भूभाग में बसी हुई दो जातियों को सूचित करता है—एक टालमी द्वारा वर्णित 'अर्स', जिसमें संस्कृत

पर, बहुतेरे ग्रंथकार इंडस नदी को भारतवर्ष की पश्चिमी सीमा नहीं बताते, वरन् 'कोफ़ेस' (Coophes) नदी को उसकी अन्तिम सीमा बना कर उसके अन्तर्गत चारसाम्राज्यों को संयुक्त करते हैं—जिड्रोसी (Gedrosi,) अरचोटी (Arachotæ,) एरिआई (Arii,) पैरोपेमिसेडी * (Paropamisadæ;), यद्यपि दूसरे लोग इन सब को एरिआई के अन्तर्गत मानना पसन्द करते हैं

बहुत से ग्रंथकार आगे और भारतवर्ष में 'निसा' (Nysa) नगर, तथा पिता बैकस (Bacchus) के पवित्र मेरुस (Morus) पर्वत को भी जहां से इस कथा की उत्पत्ति है कि वह ज्यूपिटर के जंघे से उत्पन्न हुआ था, सम्मिलित करते हैं।

'उरश' की ओर सङ्केत है, और दूसरी 'विलिट' या 'धिलघिट' जो पूर्वोक्त संस्कृत की 'गह्लत' है।

* 'जिड्रोसिया' से कदाचित् उसी जिले का ग्रहण होता है जो आजकल 'मेकरान' के नाम से विदित है। भारतीय चढाई से लौटते समय सिकन्दर इसी स्थान से होकर गया था। 'अरकोशिया' आजकल के सुलैमान पहाड़ से लेकर जिड्रोसिया तक दाक्षिण की ओर फैला हुआ था। उसकी राजधानी अरकोटस कहीं कन्दहार की ओर स्थित थी। कर्नल रालिंसन (Colonel Rawlinson) के अनुसार अरकोसिया नाम हरखवती (संस्कृत 'सारस्वती') से निकला है और उसका अवशेष अरबी शब्द 'रखज' में है। यह 'बिसुतुन' के शिलालेख का 'हरौवत' है। 'एरिया', मशद और हेरात के बीच के देश को सूचित करता था; एरियाना जिसका, कि वह एक भाग था और जिसके पर्य्याय की भांति वह कभी कभी व्यवहृत होता है, अधिक बड़ा प्रान्त था जिसके अन्तर्गत समस्त प्राचीन पारस था। बिसुतुन के शिलालेख के पारसी विभाग में 'एरिया' 'हरीवा' के नाम से प्रगट हुआ है और बाबिलोनियन विभाग में 'अरेवन' के नाम से प्रगट है। पैरोपेमिस और कोफस के विषय में देखो Ind Ant Vol.V p 329.

वे आगे 'मस्टकनी' (Astacani) को भी मिलाते हैं, जिनके देश में अंगूर और (Laurel) लारल और (Box-wood) शमशाद तथा हर प्रकार के फल के पेड़ जो यूनान में मिलते हैं बहुतायत से उपजते हैं। विलक्षण और प्रायः कल्पित विवरण जो उसकी भूमि की उर्वरता के विषय में तथा उसके फलों और पेड़ों, उसके पशु पक्षी तथा दूसरे जन्तुओं के स्वभाव के विषय में प्रचलित हैं वे इस ग्रन्थ के दूसरे भागों में यथास्थान रक्खे जायंगे। थोड़ा आगे चलकर मैं सत्रपों (साम्राज्यों) के विषय में कहूंगा, किन्तु 'टैप्रोबेन' द्वीप पर मेरे सहसा ध्यान की आवश्यकता है।

किन्तु प्रथम इसके कि हम इस द्वीप पर आवें कई दूसरे हैं, जिनमें एक पटेल (Patale) है, जो जैसा हमने सूचित किया है, इंडस के मुहाने पर स्थित है, त्रिभुजाकार है और चौड़ाई में २२० मील है। इंडस के मुहाने के आगे 'क्रिसी' (Chryse) और

* इस नाम के पाठान्तर 'अस्सगनी' तथा 'अस्पगोनी' भी हैं। M. De. St. Martin. कहते हैं "हम पहिले देख चुके हैं कि प्राचीन हेकाटिआस (Hekataios) के एक प्रकरण में 'कैसपेरस' (Kaspapyros) नगर को गण्डारिक (गान्धारीय) नगर कहा है, और हेरोडोटस ने उसी स्थान को (Paktyi) 'पैकटी' में बताया है। मैं ने यह भी कहा है कि यह विरोध केवल देखने ही में जान पड़ता है क्योंकि गान्धार और (Paktyikê) एक ही देश है। हेरोडोटस के इस 'पैकटी' नाम से अफ़ग़ान लोगों के प्राचीन 'पख़्तू' (बहुवचन पख़्तुन) नाम का पता लगा लेना कोई कठिन नहीं है। अफ़ग़ान लोग अब तक अपनी जाति को सूचित करने के लिये इसी नाम का व्यवहार करते हैं, और अपनी जातीय बोली का यही नाम बताते हैं। हम अफ़ग़ानों की उपस्थिति, जैसा लैसन ने कहा है, ईस्वी शताब्दी से कम से कम ८०० वर्ष पहिले उनकी मातृभूमि में देखते हैं। अब चूंकि अफ़ग़ान या 'पख़्त' जाति का मुख्य स्थान इंडस (सिन्ध) नदी के पश्चिम (जोकि उसकी सीमा है) (Cophes) कोफ़ि

र्जिरी' (Argyre) है * जो जैसा मैं विश्वास करता हूं धातुओं धनी है। क्योंकि मैं झटपट यह नहीं विश्वास कर सकता, ा कुछ ग्रथकारों द्वारा कहा गया है कि उनकी भूमि सोने ोर चाँदी से अच्छादित है। इनसे २० मील की दूरी पर

दी के मैदान में है, इस से जो हम पहिले कह आए हैं वह बात ौर भी दृढ़ होती है कि कैस्पपैकस (Kaspapycas) वा कश्यपपुर हिकेटैअस HeLataıos का गण्डारी) का ठिकाना सिन्ध नदी के श्चिम ढूंढना चाहिए। एक ही देश को सूचित करने के लिये फिर े दो नाम क्यों हैं? इसका कारण यह है कि एक तो उस देश का भारतीय नाम है और दूसरा उसका वहीं के निवासियों का दिया हुआ नाम है। गधार को सूचित करने के लिये एक दूसरा सस्कृत नाम "अश्वक" था। इस शब्द का अर्थ अश्वारोही वा सवार होता है। यह नाम जातीय नहीं था वरन् पजाब के निवासी लोग कोफिस (Kophes) देश के लोगों को इसी नाम से पुकारते थे क्योंकि वह देश अत्यत प्राचीन काल से घोडो के लिये प्रसिद्ध था। बोलचाल में सस्कृत अश्वक 'अस्सक' हो गया जो थोडे से परिवर्तन के साथ सिकन्दर की चढाई के इतिहासों में 'अस्सकनी' वा 'अस्सकेनी' (Assakêni) के रूप में प्रगट हुआ है। यहा अफगान नाम का पता लगा लेना कोई कठिन नहीं है क्योंकि वह 'अस्सकान' का विकृत रूप प्रत्यक्ष है। इन लोगों को (एरियन तथा और दूसेर सिकन्दर के इतिहास लिखनेवालों को) न तो हिकेटैपस का 'गडारी' और न हेरोडोटस का 'पैक्टी' ही नाम ज्ञात था, पर चूकि यह और 'अस्सकनी' एक ही देश के नाम हैं और व्यवहार में 'अफगान और 'पखतुन' शब्द पर्य्यायवाची हैं इससे इन सब के एक होने में कोई सन्देह नहीं है" 'गन्धार का नाम अत्यत प्राचीन है यह ऋग्वेद में भी आया है।

'क्रोकेला' * स्थित है, जहां से वारह मील की दूरी पर 'बिबगा' है जो सीपों तथा और दूसरे घोंघों से भरा है । इसके उपरान्त उल्लेख के अयोग्य वहुतों के अतिरिक्त उपर्युक्त द्वीप से नौ मील दूर 'टोरलिबा' (Toralliba) पड़ता है ।

खण्ड ५६ (ख)

Solin 52. 6-17

भारतीय जातियों की सूची ।

हिन्दुस्तान की सब से बड़ी नदियां गंगा और इन्डस हैं, और इन में से कोई कोई कहते हैं कि गंगा वेजाने हुए उद्गमों से निकलती है, और नाइल के ढंग पर देश को तराबोर करती है, पर दूसरे यह विचारने में झुके हैं कि वह स्कीदियन पर्वतों से निकलती है । [उत्कृष्ट नदी हाइपेनिस भी यहीं है जो कि सिकन्दर की चढ़ाई की सीमा थी, जैसा कि उसके तट पर उठाई हुई वेदियाँ प्रमाणित करती हैं †] गंगा की सब से कम चौड़ाई आठ मील है

---

* कराची की खाड़ी में जो टालमी का 'कोलका' (Kolaka) है । यह ज़िला जिसमें कराची स्थित है अब तक 'करकल्ला' कहलाता है ।

† देखो Arrian's Anal V. 29 जहां पर लिखा है कि सिकन्दर ने अपनी सेना को जुदे जुदे भागों में बाँटकर उन्हें हाइफेसिस के किनारे पर वारह वेदियां ऊँचाई में सब से ऊँचे धरहरों के बराबर, और चौड़ाई में उनसे भी अधिक बनाने की आज्ञा दी । कर्टियस (Curtius) से हमें ज्ञात होता है कि वे चौखूंटे शिलाखंडो की बनाई गई थीं । उनके ठिकाने के विषय में बड़ा विवाद है, किन्तु वह अवश्य (Sopithes) सोपिथीज़ की राजधानी के निकट रहा होगा, जिनके नाम

और सब से अधिक बीस। उसकी गहराई जहां वह अत्यन्त छिछली है पूरी सौ फ़ीट है। लोग जो अत्यन्त दूर स्थित भाग में रहते हैं गंगरिडीज (Gangarides) हैं, जिनके राजा के पास १००० घोड़े, ७०० हाथी, और ६०००० पैदल युद्ध यंत्र के साथ हैं।

भारतवासियों में कोई भूमि जोतते हैं, बहुतेरे तो युद्ध के अनुगत हैं और बहुतेरे व्यापार के। सब से उच्च और धनाढ्य राजकाज का प्रबन्ध करते हैं, न्याय विचारते हैं, और राजा के साथ सभा में बैठते हे। एक पांचवां वर्ग भी बुद्धि के हेतु सब से अग्रगण्य उन लोगों का है जो, जब जीवन से उकता जाते हैं तब एक जलती हुई चिता पर बैठ कर मृत्यु बुलाते है। पर वे जो कठोर सम्प्रदाय के विरागी हो गए हैं, और अपना जीवन जंगलों में बिताते हैं, हाथी पकड़ाते हैं, जिसको, जब वह बिलकुल पालतू और सीधा हो जाता है, वे जोतने और चढ़ने के काम में लाते हैं।

गगा म एक अत्यंत मावाद द्वीप है जो एक बड़ी शक्तिमती जाति से बना है, जिसका राजा ५०००० पैदल, और ४००० घोड़े शस्त्रों से सुसज्जित रखता है। यथार्थ में कोई राज्यशक्ति से समन्वित व्यक्ति कभी अपनी सेना को बिना बहुसख्यक हाथियों, पैदल तथा अश्वारोहियों के नहीं रखता।

प्रेसियन जाति, जो अत्यंत शक्तिमान है, पैलिबोथ्रा नामक नगर में बसती है, जिससे कोई कोई उस जाति ही को पालिबोथ्री कहते हैं। उनका राजा प्रत्येक समय अपने वेतन से ६०००० पैदल ३०००० घोड़े, और ८००० हाथी रखता है।

को प्रो० लैसन् ने संस्कृत 'अश्वपति' से मिलाया है। रामायण के १२ अध्याय के अनुसार इन अश्वपति राजाओं की भूमि 'विपाशा' (हाइफेसिस् वा व्यास) नदी के दाहिने वा उत्तरीय किनारे पर, उस नदी (व्यास) तथा इरावती के मध्यवर्ती दोआब के पहाड़ी भाग में थी। वाल्मीकि के काव्य में उनकी राजधानी को 'राजगृह' कहा है, जो अब तक 'राजगिरि' के नाम से प्रसिद्ध है। यहा से थोड़ी दूर पर 'सिकन्दरगिरि' नाम की पहाड़ियों की एक शृंखला है।

पालिबोथ्रा के आगे * मल्यौस (Maleus) पर्वत है जिस पर ६ महीने के अन्तर पर छाया जाड़े में उत्तर की ओर और गरमी में दक्षिण की ओर पड़ती है। उस देश में सप्तर्षि केवल वर्ष में एक बेर दिखाई देते हैं, और वह भी पन्द्रह दिन से अधिक के लिये नहीं, जैसा कि 'बेटन' (Beton) हमें सूचित करता है, जो मानता है कि यह भारतवर्ष के कई भागों में होता है। वे जो इंडस के निकट उन देशों में रहते हैं जो दक्षिण ओर घूमे हैं दूसरे की अपेक्षा गरमी से अधिक झुलसे हैं, और कम से कम उनकी रंगत पर प्रत्यक्ष सूर्य की महती शक्ति का प्रभाव पड़ा है। पर्वतों पर बौनों का निवास है।

किन्तु जो लोग समुद्र के निकट रहते हैं वे कोई राजा नहीं रखते।

पांडियन् जाति स्त्रियों द्वारा शासित होता है, और उनकी पहिली रानी हरक्यूलीज़ (Hercules) की पुत्री कही जाती है। 'नैसा' (Nysa) का नगर इसी देश में बताया जाता है, जैसा कि मेरस (Meros) नाम का ज्यूपिटर का पवित्र पर्वत एक कन्दरा में है जिसमें पुराने भारतवासी कहते हैं कि पिता बेकस (Bacchus) पाला गया था; और इसी नाम से उस प्रसिद्ध भ्रान्तिपूर्ण कथाओं की उत्पत्ति है कि बेकस (Bacchus) अपने पिता के जंघे से उत्पन्न हुआ था। इंडस के मुहाने के आगे 'क्रिसी' और 'अर्जिरी' दो द्वीप हैं, जो धातुओं की इतनी प्रचुर आय प्रदान करते हैं कि बहुतेरे ग्रन्थकारों ने उनकी भूमि ही को सोने और चांदी की कहा है।

---

* कदाचित् जैसा यूल साहब ने कहा है, दमोदा के निकट पारसनाथ जो क्रान्तिवृत्त (Tropic) से दूर नहीं है। Vide Ind Ant VI P, 127 note. 'मर्ल' को जिन के देश में यह पर्वत था, एरियन द्वारा वर्णित पंजाब के 'मार्ली' के साथ गड़बड़ न करना चाहिए।

खण्ड ५७।

Polyœn Strateg, 1 1, 1-3.

डायोनिसस् के विषय में।

(मिलाओ संग्रह २९ इत्यादि)

डायोनिसस् ने भारतवासियों के विरुद्ध चढ़ाई में इस हेतु जिसमें नगर उसका खुशी से स्वागत करें उन अस्त्रों को जिनसे उसने अपनी सेनाओं को सुसज्जित किया था छिपा दिया था, और और उन्हें कोमल वस्त्र और मृगचर्म्म पहिना दिया था। भाले इश्कपेचों (लता) से लपेटे हुए थे और (Thrysus) की नोक तेज़ थी। वह युद्ध की घोषण तुरही के स्थान पर झांझ और ढोल से करता था, और शत्रु को मद्य से अनुरञ्जित कर के उसने उनके ध्यान को युद्ध से नृत्य की ओर फेर दिया था। ये तथा और दूसरे बैकिक उपचार उस युद्धशैली में व्यवहृत हुए थे जिससे उसने भारतवासियों तथा शेष समस्त एशिया को परास्त किया था।

डायोनिसस् ने, अपनी भारतीय चढ़ाई के बीच, यह देख कर कि उसकी सेना वायु की दाहक तपन को नहीं सहन कर सकती भारतवर्ष के तीन शिखरवाले एक पर्वत को बलात् अधिकार किया। इन शिखरों में से एक कोरासिबिए (Korasibie) कहलाता है, दूसरा 'कोण्डस्क'(Kondaske) पर तीसरे को स्वयं उसने अपने जन्म के स्मारक में 'मेरोस' (Meras) का नाम दिया। उन पर पीने में मीठे बहुत से पानी के झरने थे, अहेर बहुतायत से था, पेड़ों के फल अत्यन्त अधिकता के साथ थे, और हिम था जो शरीर को नई उत्तेजना देता था। वहां पर ठहरी हुई सेनाएँ मैदान के बर्बरों पर एकबारगी टूट पड़ीं और उन्हें सहज में काट डाला, क्योंकि वे पहाड़ियों पर एक ऊंचे स्थान से उन पर क्षेपणीय शस्त्रों से आक्रमण करती थीं।

[डायोनिसस् ने भारतवासियों को जीतने के उपरान्त अपने साथ सहायकों की भांति भारतवासियों और अमेजन (Amazons) लोगों को लेकर, बैक्ट्रिया पर चढ़ाई की। उस देश की सीमा सरंजीसस् * (Sarangēs) नदी थी, बैक्ट्रियन लोगों ने उस नदी के ऊपर के पर्वतों को इस अभिप्राय से अधिकृत कर लिया जिसमें वे डायोनिसस् पर, उसे पार करते समय, एक अच्छे स्थान से आक्रमण करें। पर चूंकि वह नदी के किनारे डेरा डाले हुए था, उसने 'अमेज़न' और 'बक्खाई (Bakkhae) लोगों को उसे पार करने की आज्ञा दी, जिसमें बैक्ट्रियन लोग, स्त्रियों प्रति घृणा के कारण पहाड़ियों पर से नीचे उतरने के लिये उतारू हों। स्त्रियां तब नदी को पार करने के लिये बढ़ीं और शत्रु पहाड़ी से नीचे उतरे और नदी की ओर बढ़ कर उन्हें मार कर पीछे हटा देने का प्रयत्न करने लगे। स्त्रियां तब पीछे हटीं, और बैक्ट्रियन लोगों ने उनका किनारे तक पीछा किया; तब डायोनिसस् ने, अपने आदमियों के साथ रक्षा के निमित्त आकर, बैक्ट्रियनों का वध किया जोकि प्रवाह के कारण लड़ाई करने से रुक जाते थे, और उसने नदी को कुशलपूर्वक पार किया।

खण्ड ५८।

Plyan Strateg 1 3-4

हरक्यूलीज़ और पांडिए के विषय में।

हरक्यूलीज़ को भारतवर्ष में एक कन्या हुई जिसका उसने 'पंडेइया' नाम रक्खा। उसने उस भारतवर्ष का वह भाग प्रदान किया जो दक्षिण ओर है और समुद्र तक फैला हुआ है, और अपने

---

* See Ind Ant, notes to Arrian in vol V. p 332.

शासन के आधीन लोगों को ३६५ गाँवों में यह आज्ञा देकर बांटा कि एक गाँव प्रत्येक दिन खज़ाने में राजकर लिया करें; जिसमे रानी को उन लोगों को दबाने के लिये जो देने में त्रुटि करें सदा उन लोगों की सहायता मिलती रहे जिनकी कर देने की पारी हुआ करे।

खण्ड ५९।

भारतवर्ष के पशुओं के विषय में।

Ælian, Hist. Anim XVI 2 22.*

(२) भारतवर्ष में मैं सुनता हूं कि पक्षी पाए जाते हैं जो तोते कहलाते हैं, और यद्यपि निस्सन्देह मैं ने पहिले ही उनका वर्णन किया है, तथापि जो कुछ पहिले उनके विषय में कहना मैं ने छोड़ दिया है वह यहां बड़ी उपयुक्तता के साथ रक्खा जो हो सकता है। मुझे ज्ञात हुआ है कि उनकी तीन जातियां हैं, और ये सब

---

* "इस खण्ड में बहुत से प्रकरण ऐसे मिलते हैं जो मेगास्थिनीज़ से लिए हुए जान पड़ते हैं। यह विचार, यद्यपि किसी प्रकार से दृढ़ प्रमाणों द्वारा संदेह से रहित नहीं कहा जा सकता, पर कई कारणों से यह कुछ संभव जान पड़ता है। क्योंकि पहिले तो, ग्रन्थकार भारतवर्ष के आन्तरिक भागों का ज्ञान असाधारण सूक्ष्मता के साथ रखता है। और फिर वह कई बेर प्रेसिआई और ब्राह्मणों का उल्लेख करता है। और अन्त में इस बात में कदाचित् ही कोई सन्देह करे कि इस खण्ड के मध्य में के कुछ प्रकरण मेगास्थिनीज़ से लिए गए हैं। इसलिये इस सन्देह के रहते, मैं ने इस बात का ध्यान रक्खा है कि यह समस्त खण्ड मेगास्थिनीज के संग्रह के अन्त में छापा जाय—(Schwanbeck)

यदि बोलना सिखाए जांय, जैसे लड़के सिखाए जाते हैं, तो लड़कों ही की भांति यथवादी हो जाते हैं और मनुष्य की बोली में बोलते हैं; किन्तु जंगलों में वे पक्षियों की भांति चिल्लाते हैं, और न कोई स्पष्ट और सुरीला स्वर निकालते हैं, न जंगली और अशिक्षित रहने के कारण, बातचीत कर सकते हैं। भारतवर्ष में मोर भी होते हैं जो उन सब से बड़े होते हैं जो और कहीं मिलते हैं तथा हलके हरे रंग के पेड़खे भी होते हैं। वह जो पक्षीविद्या में भली प्रकार निपुण नहीं है इन्हें पहिले पहिल देखकर तोते समझेगा कबूतर नहीं। चोंच और टांगों के रंग में ये यूनानी तीतरों से मिलते हैं। मुर्गे भी होते हैं जो असाधारण डील के होते हैं, और उनकी शिखा लाल नहीं होती जैसी और स्थानों किम्बा हमारे देश में, किन्तु उनके फूल की तरह मुकुट होते हैं जिनकी शिखा कई रंगो की बनी होती है। उनके पुट्ठे पर न तो पेचीले और न मरोड़े हुए होते हैं, पर वे बड़ी चौड़ाई के होते हैं, और वे उन्हें उसी ढंग से फैलाते हैं जैसे मोर अपनी पूंछ को फैलाते हैं। इन हिन्दुस्तानी मुर्गों के पर रंग में सुनहले तथा मरकत की भांति गाढ़े-नीले भी होते हैं।

(३) भारतवर्ष में एक और विलक्षण चिड़िया पाई जाती है। यह तिलहर (Starling) के डील की होती है और चितकबरे रंग की होती है, और उसे मनुष्य की बोली के स्वर उच्चारण करना सिखाया जाता है। यह तोते से भी अधिक वाचाल, तथा स्वाभाविक चतुराई में बढ़कर होती है। यह मनुष्यों के अधीन रह कर प्रसन्नता के साथ उनके द्वारा चुंगाए जाने से इतना दूर भागती है और स्वतंत्रता से इतना अनुराग रखती है तथा मनमाने अपने साथियों के संग में कुहकने की ऐसी इच्छा रखती है कि उत्तम उत्तम भोजन से संयुक्त दासत्व की अपेक्षा भूखों मरना पसन्द करती है। यह उन मेसिडोनियों द्वारा 'कर्किमोन' कहलाता है जो 'बौकेफेला' के नगर में तथा उसके आस पास और 'कुरुपोलिस' (Kuru-polis) तथा उन दूसरे नगरों में जिन्हें फ़िलिप के पुत्र सिकन्दर ने निर्मित किया था, बस गए थे। मैं विश्वास करता हू कि इस नाम

का मूल इस बात में है कि यह चिड़िया अपनी पूंछ उसी ढंग से हिलाती है जैसे एक प्रकार की जलचिड़िया।

(४) मैं आगे और सुनता हूं कि भारतवर्ष में एक 'केलस' (Kelas) कहलानेवाली चिड़िया होती है, जो पेरू से डील में तिगुनी होती है और असाधारण परिमाण की चोंच और लम्बी टांगें रखती है। यह चमड़े की थैली से मिलते जुलते एक बड़े झोझ से भी संयुक्त रहती है। बोली जो यह बोलती है अत्यंत कर्कश होती है। पंख इसके खाकी रंग के होते हैं, केवल नोंक पर रोएं पीले रंग के होते हैं।

(५) मैं और भी सुनता हूं कि हिन्दुस्तानी हूपू (Hoopoe enona) हमारे से डील में दूना और स्वरूप में अधिक सुन्दर होता है, और होमर कहता है कि जैसे घोड़े की लगाम और साज 'हेलनिक' (Helenic) राजाओं के दिल बहलाव हैं वैसेही यह हूपो (Hoopoe) भारतवासियों के राजा का प्यारा खिलौना है, जो उसे अपने हाथ पर लिये रहता है, और उसके साथ खेलता है, और उसके चमत्कार तथा उस सौन्दर्य्य की ओर जिससे प्रकृति ने उसे भूषित किया है, आल्हाद के साथ निहारने से कभी नहीं थकता। अतएव, ब्राचमनीज लोग यहां तक कि इस पक्षी विशेष को एक अलौकिक कहानी का विषय बनाते हैं, और उसकी जो कहानी कही जाती है इस प्रकार है—भारतवासियों के राजा को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस लड़के के बड़े भाई थे, जो जब युवावस्था को पहुँचे, बड़े अन्यायी और अत्यन्त बुरे निकले। वे अपने भाई का अपमान करते थे क्योंकि वह सब से छोटा था, और अपने और माता पिता का भी वे ठट्ठा करते थे। इनका वे इस कारण अपमान करते थे कि वे बहुत बूढ़े और श्वेतकेश थे। अतः यह लड़का और उसके बूढ़े माता पिता इन बुरे आदमियों के साथ अधिक दिन तक न रह सके, और वे सब तीनों एक साथ घर से भाग निकले। इस लम्बी यात्रा के बीच जो उन्हें करनी पड़ी, वृद्ध लोग थकावट से गिर गए और मर गए, और उस लड़के ने उन्हें कुछ कम श्रद्धा नहीं दिखाई वरन् अपना सिर तलवार से काट कर उन्हें अपने में गाड़ दिया। फिर जैसा कि ब्राचमनीज़ लोग कहते

है सर्वदर्शी सूर्य्य ने इस उत्कृष्ट पुण्य के कार्य्य की प्रशंसा में उस लड़के को पक्षी के रूप में परिवर्तित कर दिया, जो देखने में अत्यंत सुन्दर होता है, और जो बहुत दीर्घ अवस्था तक जीवित रहता है। सो उसके सिर पर एक शिखा निकली जो मानों उसकी स्मारक थी जो उसने अपने भागने के समय किया था। अथीनि-यन लोगों ने भी चोटीवाली लवा की कहानी में कुछ कुछ इसी प्रकार की अद्भुत बातें वर्णन की हैं, और मुझे जान पड़ता है कि विनोदशील कवि आरिस्टोफेनीज (Aristophanes) ने वहां इसी कहानी का अनुकरण किया है जहां वह 'पक्षी' के विषय में कहता है, "क्योंकि तू अज्ञानी था और न ईसाप से सदैव रगड़ किया था और न सदा उसे पोंछा था जिसने चोटीवाली लवा की बात कही है, और उसे सब चिड़ियों में प्रथम बताया है क्योंकि वह पृथ्वी होने से पहिले ही उत्पन्न हुई थी, और कहा है कि किस प्रकार पीछे से उसका पिता बीमार हुआ और मर गया, और किस प्रकार वह पांचवें दिन तक बेगाड़े पड़ा रहा क्योंकि पृथ्वी तब नहीं थी, जब कि उसकी कन्या ने, और कहीं समाधिस्थल पाने में असमर्थ होकर अपने सिर ही में उसके लिये एक कब्र खोदी'।

अतः यह सम्भव जान पड़ता है कि यह कहानी, यद्यपि इसका पात्र एक भिन्न पक्षी है भारतवासियों से निकली और आगे यूना-नियों तक फैल गई। क्योंकि ब्राचमनीज लोग कहते हैं कि बहुत काल बीता जब हिन्दुस्तानी हूपो (Hoopoe) ने, जो तब मनुष्य के स्वरूप में और वय में अल्प था, अपने माता पिता के प्रति यह पुण्य का कार्य्य किया था।

(६) भारतवर्ष में स्थल पर के घड़ियाल के स्वरूप में बहुत मिलता जुलता और कुछ कुछ माल्टास (Maltese) कुत्ते के लग-भग डील का एक पशु होता है। यह सर्वत्र पपरीले चमड़े से ढका होता है जो इतना खुरखुरा और ठोस होता है कि जब उधेड़ा जाता है तब यह भारतवासियों द्वारा रेती की भांति काम में लाया जाता है। यह पीतल छेदता है और लोहा काट डालता है। वे इसे फटाजिस (पपरीला पिपीलिकाभक्षक) कहते हैं।

(८) भारतीय सागर सामुद्रिक-सर्प उत्पन्न करता है जिन के चौड़ी पूछ होती है और झीलें अपार्ड डील डौल के जलजन्तु

(Hydras) उत्पन्न करती हैं; किन्तु ये सामुद्रिक-सर्प विषैले की अपेक्षा अधिक तीव्र क्षत पहुंचाते हुए जान पड़ते हैं।

(६) भारतवर्ष में जंगली घोड़ों तथा जंगली गधों के झुंड होते हैं। वे कहते हैं कि घोड़ियां गधों द्वारा ढँका जाना अङ्गीकार करती हैं और ऐसे प्रसंग से प्रसन्न होती हैं, और खच्चर वियाती हैं जो लाल रंग के और बड़े फुरतीले होते हैं, किन्तु जूए से घबड़ाते हैं तथा और बातों में भी चंचल होते हैं। वे कहते हैं कि वे इन खच्चरों को फंदे से पकड़ते हैं, और तब उन्हें प्रेसियन लोगों के राजा के पास ले जाते हैं; यदि ये जब दो ही बरस के होते हैं तभी पकड़े जाते हैं तब तो निकाले जाने में कोई बाधा नहीं करते, पर यदि वे जब उस अवस्था के ऊपर हो जाते हैं और पकड़े जाते हैं तब वे तीक्ष्ण दन्त और मांसभक्षी जन्तुओं से किसी बात में भी भिन्न नहीं होते।

(खण्ड १८ आगे पड़ता है)

(११) भारतवर्ष में एक वनस्पत्याहारी जन्तु पाया जाता है जो घोड़ों के डील से दूना होता है, और जिसके झाड़ीदार तथा रंग में खालिस काली पूछ होती है। इस पूंछ के बाल मनुष्य के बाल से बारीक होते हैं, और उसकी प्राप्ति एक ऐसा विषय है जिसका भारतीय स्त्रियां बड़ा मोल करती हैं, क्योंकि उसे वे अपने स्वाभाविक केशगुच्छ से बांध और गूथ कर उससे एक मनोहर जूड़ा बनाती हैं। एक बाल की लम्बाई दो क्युबिट होती है; और अकल एक जड़ से झालर के रूप में लगभग तीस बाल के निकलते हैं। यह पशु स्वय जाने हुए जानवरों में सब से डरपोक होता है, क्योंकि यदि यह देख पावे कि कोई उसकी ओर ताक रहा है तो वह अपने पूरे वेग के साथ भागता है, और सीधे आगे की ओर दौड़ता है—किन्तु उसके भागने की इच्छा उसकी चाल की तेजी की अपेक्षा अधिक होती है। इसका अहेर अच्छे दौड़ने-

वाले घोड़ों और कुत्तों से होता है। जब यह देखता है कि यह पकड़ा जाने पर है, तब वह अपनी पूंछ को किसी निकट की झाड़ी में छिपा देता है, और स्वयं अपने पीछा करनेवालों की ओर मुंह करके चौकस होके खड़ा हो जाता है, ध्यानपूर्वक देखता रहता है। यह एक प्रकार हिम्मत पकड़ता है, और समझता है कि चूंकि उसकी पूंछ दृष्टि से छिपी हुई है शिकारी लोग उसके पकड़ने की फ़िक्र न करेंगे, क्योंकि वह जानता है कि उसकी पूंछ ही खिंचाव की वस्तु है। पर यथार्थ में, यह इसका व्यर्थ भ्रम ठहरता है क्योंकि कोई उसे विषैले भाले से मार देता है, और इसकी सारी खाल खींच लेता है (क्योंकि यह मूल्यवान होती है) और शव फेंक देता है क्यों कि भारतवासी लोग उसके मांस को किसी काम में नहीं लाते।

(१२) किन्तु आगे (बढ़ते हैं)। भारतीय समुद्र में ह्वेल मिलती है, और वह बड़े से बड़े हाथी से पांच गुना बड़ी होती है। इस विशाल मछली की पसुली माप में बीस क्यूबिट् होती है, और उसका ओठ पन्द्रह क्यूबिट्। गलफड़े के निकट के पर चौड़ाई में सात क्यूबिट् तक होते हैं। 'केरुकिस' (Kerukes) कहलानेवाली खोपड़ीदार मछली (Shell fish) भी मिलती है, और अरुणमत्स्य भी ऐसे आकार के मिलते हैं कि वे सहज ही में गैल्न माप के भीतर आ सकते हैं, और खड़री सी-अर्चिन (Sea Urchin) भी इतनी बड़ी होती है कि उसी परिमाण की माप को पूरा छेंक सकती है। पर भारतवर्ष में मत्स्य बड़े दीर्घ विस्तार तक पहुँच जाते हैं विशेष कर के सामुद्रिक वृक (Sea-Wolves) थन्नी (Thunnies) और स्वर्ण भ्रू (Golden-Eye-Brows)। मैं यह भी सुनता हूं कि उस ऋतु में जब नदियां बढ़ आती हैं और अपनी पूरी उमगी हुई बाढ़ से सारी धरती को तराबोर कर देती हैं, तब मछलियां खेत में बह आती हैं, जहां वे छिछले पानी में भी तैरती इधर उधर घूमती हैं और जब वर्षा, जो नदियों को बढ़ा देता है,

---

* एक प्रकार की मछली जिसका पेट चांदी की भांति सफ़ेद और पीठ हरापन लिये होती है।

बन्द हो जाती है और जल भूमि से पलट कर स्वाभाविक सोतों में चला जाता है, तब नीचे स्थलों में तथा चौरस और गीली भूमि में, जहां निश्चय है कि 'नव' नामधारियों के कुछ अरा-निकेत होंगे, आठ क्यूबिट् तक लम्बी मछलियां मिलती हैं, जिन्हें किसान लोग स्वयं पकडते हैं जब कि वे छटपटाती हुई पानी की सतह पर तैरती फिरती है, जो कि इतनी गहराई का नहीं रह जाता कि वे स्वच्छन्दता से उसमें चल सकें,वरन् वास्तव में इतना छिछला रहता है कि अत्यत कठिनता से वे उसमें रह सकती हैं।

(१३) नीचे लिखी मछलियां भी भारतवर्ष की चिरवासिनी हैं—कांटेदार रोच (Roach) जो कभी अर्गालिस (Argolis) के सर्प से किसी अंश में छोटी नहीं होती; और झिंगा जो भारतवर्ष में केकड़े से भी बड़ी होती है। मुझे कह देना चाहिए कि ये समुद्र से गगा में ऊपर चढ़ आती हैं और इनके पजे होते हैं जो बहुत बड़े और छूने में खुरखुरे होते हैं। मैंने पता लगाया है कि उन झिंगा के जो फ़ारस की खाड़ी से इडस नदी में आती हैं कांटे चिकने और आड़े होते हैं जिनसे वे सुशोभित होती हैं, वे बढे हुए और पेचीले भी होते हैं; किन्तु इस जाति की मछलियों के पंजे नहीं होते।

भारतवर्ष में कछुवा मिलता है, वहां यह नदियों में रहता है। यह बड़े आकार का होता है और इसकी खोपडी एक पूरी डोंगी से छोटी नहीं होती और उसमें दस मेडिमनी (१२० गैलन) दाल अमा सकती है। भूकच्छप भी मिलते हैं जो इतने बडे होते है जितने किसी ऐसी उत्तम भूमि के बड़े से बड़े ढेले जहां कि मिट्टी बडी उपजाऊ रहती है तथा हल गहिराई तक धंसता है, और सहज में कियारियां खोद कर ढेलों को ऊपर बिछा देता है। कहा जाता है कि ये अपनी खोपड़ी गिरा देते हैं। किसान तथा और सब खेती के काम में लगे हुए लोग इनको अपनी कुदाल से उलट देते हैं और इन्हें ठीक उसी रीति से बाहर निकाल ले जाते हैं जैसे कोई घुन को उन पौधों में से निकाले जिनको वे खाए रहते हैं। वे मोटे होते हैं और उनका मांस मीठा होता है और समुद्र-कच्छप के ऐसा कड़ुवा स्वाद उस में नहीं होता।

(१५) बुद्धिमान पशु हम लोगों के बीच भी पाए जाते हैं, पर वे थोड़े हैं, और इतने अधिक नहीं हैं जितने भारतवर्ष में। क्योंकि यहां हम हाथी को पाते हैं जो इस गुण को पूरा करता है, और तोते, 'स्फिंक्स' (Sphinx) जाति के लंगूर तथा 'सटायर' (Satyr) कहलानेवाले जीव मिलते हैं। हमें हिन्दुस्तानी चींटी को भी यहां न भूलना चाहिए, जो अपनी बुद्धिमानी के लिये इतनी प्रसिद्ध हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे देश की चींटियां अपने लिये पृथ्वी के भीतर छेद और बिल खोदती हैं और छेद करके अपने छिपने के लिये स्थान बनाती हैं और अपना सारा बल खोदने के काम में लगा देती हैं जो अकथनीय परिश्रमसाध्य है और छिपा कर किया जाता है; किन्तु हिन्दुस्तानी चींटियां अपने लिये नन्हें नन्हें वासगृहों के झुंड बनाती हैं; जो ढालुई या चौरस भूमि पर नहीं रक्खे जाते बरन् खड़े और ऊंचे टीलों पर रक्खे जाते हैं। और इनमें अकथनीय कौशल के साथ पेचीले मार्ग निकाल कर, जो मिश्री (Egyptian) समाधिकोठरियों तथा क्रट की (Cretan) भुलभुलैया का स्मरण दिलाते हैं, वे अपने घर की बनावट को ऐसा गढ़ती हैं कि कोई भी लकीर सीधी नहीं जाती; और घुमाव और छेद इतने पेचीले होते हैं कि किसी वस्तु का उसके भीतर प्रवेश करना या बहकर जाना कठिन है। बाहर की ओर वे, अपने आने जाने तथा अन्न के जिन्हें वे इकट्ठा करती अपने भंडार घर में ले जाती हैं, लेजाने भर को केवल एक ही छेद रखती हैं। अपने भवनों के लिये ऊंची स्थिति चुनने से उन का अभिप्राय नदियों की ऊंची बाढ़ और बूड़े से बचने का रहता है; और यह लाभ वे अपनी दूरदर्शिता द्वारा उठाती हैं और वे तब मानों इतने रक्षादुर्गों वा द्वीपों में रहती हैं जब की ऊंचाई के आस पास के भाग समस्त एक झील हो जाते हैं। और फिर, दूह जिनमें वे रहती हैं, यद्यपि सटे रहते हैं तथापि बाढ़ में ढहते वा ढीले कभी नहीं होते, बरन् दृढ़ होते हैं विशेष कर के प्रभातीय ओस से। क्योंकि वे इसी ओस के बने हुए एक प्रकार के हिम के वस्त्र पहिन लेती हैं—जो निस्सन्देह पतले तो होते हैं पर तिस पर भी कुछ पोढ़े होते हैं; इसके अतिरिक्त वे चिपके हुए खर पतवार तथा पेड़ों की छाल से, जिन्हें नदियों की मिट्टी ले आती है, जड़ के पास और भी ठोस हो जाते हैं। सब हिन्दुस्तानी चींटियों के

विषय में मैं उतनाही कह के रहने देता हूं जितना बहुत दिन हुए 'गायोयस' (Iobas) ने कहा था।

(१६)भारतीय परेयनोई (Areianoi) के देशमें भूगर्भ के नीचे एक दरार है, जिसके भीतर गुप्त कोठरियां, छिपी हुई गलियां, और मनुष्यों के अदृश्य मार्ग हैं। ये गहरे हैं, और बड़ी दूर तक फैले हैं। ये किस प्रकार बने और किस प्रकार खोदे गए भारतवासी नहीं बताते, और न मुझे पूछने से प्रयोजन है। यहां भारतवासी लोग तीस हज़ार मूंड़ से ऊपर भिन्न भिन्न प्रकार के चौपाये, भेड़ बकरी, तथा बैल और घोड़े ले आते हैं; और प्रत्येक मनुष्य जो अमाङ्गलिक स्वप्न से या किसी चितावनी वा भविष्यद्वाणी से भयभीत होता है, अथवा जो बुरे सगुन का पक्षी देख लेता है वह अपने जीवन के प्रतिकार में ऐसा बलि उस दरार में छोड़ता है जैसा उसका चित्त प्रदान कर सकता है; यह पशु उसके प्राण को जीवित रखने के लिये भेंट की भांति दिया जाता है। बलिपशु जो यहां लाए जाते हैं सीकड़ों में नहीं लाए जाते और न घोंसे आते हैं, वरन् वे आप से आप इस मार्ग पर से चलते हैं मानों किसी गुप्त मन्त्र के द्वारा प्रेरित हुए हों, और ज्योंही वे दरार की बारी के पास पहुंचते हैं वे आप से आप उसमें कूद पड़ते हैं; और जैसे ही वे पृथ्वी की इस रहस्यमय और अलक्षित गुफा में गिरते हैं वैसे ही मनुष्य की दृष्टि से सदैव के लिये लोप होजाते हैं। किन्तु ऊपर बैलों का डकरना, भेड़ों का मिमियाना, घोड़ों का हिनहिनाना, बकरियों का बिंबियाना सुन पड़ता है, और यदि कोई किनारे के बहुत पास जाता है और अपना कान लगाता है तो वह बहुत दूर से उपरोक्त शब्दों को सुनता है। यह मिलीजुली ध्वनि ऐसी है जो कभी बंद नहीं होती, क्योंकि प्रत्येक दिन जो बीतता है लोग उनके स्थान पर नए बलि ले आते है। मैं यह नहीं मानता कि सब के पीछे लाए हुए पशुओं ही का शब्द सुन पड़ता अथवा उनका भी जो पहिले लाए गए थे—जो कुछ मैं जानता हूं वह इतना ही कि शब्द सुन पड़ते हैं।

(१७) उस समुद्र में जो वर्णित हो चुका है एक बहुत बड़ा द्वीप है, जिसका नाम, जैसा कि मैं सुनता हूं, 'टैप्रोबेनी' (Taprobanê) है। जहां तक मुझे ज्ञात है, वह एक बहुत लम्बा और पहाड़ी द्वीप

जान पड़ता है; उसकी लम्बाई ७००० स्टेडिया और चौड़ाई ५००० स्टेडिया है। * परन्तु इस में कोई नगर नहीं है, वरन् केवल ग्राम हैं जिनकी संख्या लगभग ७५० है। घर जिनमें निवासी लोग रहते हैं लकड़ी के बने होते हैं, और कभी कभी सरकंडे के भी।

(१८) उस समुद्र में जो टापुओं को घेरे है इतने विशाल आकार के कछुए पैदा होते हैं कि उनकी खोपड़ियां मकान की छत बनाने के काम में लाई जाती हैं; क्योंकि खोपड़ी, लम्बाई में पन्द्रह क्यूबिट् होने से, अपने नीचे बहुत से आदमी रख सकती है और उन्हें सुहावनी छाया देने के अतिरिक्त धूप की झुलसानेवाली गरमी से बचाती है। किन्तु, इस से बढ़कर, यह मेंह और तूफ़ान से रक्षा के निमित्त खपड़ों से कहीं अधिक काम की होती है, क्योंकि यह तुरंत मेंह को जो उस पर टकराता है ढरका देती है, और उसकी छाया के नीचे के लोग मेंह को मानों किसी मकान की छत पर पड़पड़ाते हुए सुनते हैं। चाहे जो हो उन्हें उन लोगों की भांति अपने घर को बदलने की ज़रूरत नहीं होती जिनका खपड़ैल फूट जाता है, क्योंकि खोपड़ी कड़ी और खोखली चट्टान तथा स्वाभाविक गुफा की पटी हुई छत के समान होती है।

अतः महासागर के उस टापू में जिसे लोग 'टैप्रोबेनी' कहते हैं, खजूर की बारी हैं जहां पेड़ सब एक श्रेणी में अद्भुत क्रम के साथ लगाए जाते हैं, उसी रीति से जैसे हम प्रमोदवाटिकाओं के रखवालों को छायादार पेड़ों को चुने हुए स्थानों पर लगाते देखते हैं। उसमें हाथियों के झुंड भी हैं जो वहां बहु संख्यक और अत्यंत दीर्घ आकार के होते हैं। ये टापू के हाथी महाद्वीप के हाथियों की अपेक्षा अधिक बलिष्ट और देखने में बड़े होते हैं, और हर प्रकार से अधिक बुद्धिमान ठहराए जा सकते हैं। द्वीपवासी उन्हें सामने के महाद्वीप में उन नावों पर भेजते हैं जिन्हें वे वस्तुतः इसी व्यापार के लिये द्वीप की झाड़ियों से प्राप्त लकड़ी से बनाते हैं, और वे अपने माल

* प्राचीन ग्रंथकारों ने उस द्वीप के विस्तार को बहुत बढ़ा कर लिखा है। इसकी यथार्थ लम्बाई उत्तर-दक्षिण २७१½ मील है और चौड़ाई पूर्व-पश्चिम १३७½ मील, और इसका घेरा लगभग ६९० मील के है।

को कलिङ्ग के राजा के यहां पहुंचाते हैं। द्वीप के बड़े आकार के कारण अन्तर्भाग के निवासी समुद्र को कभी नहीं देखते हैं और अपना जीवन महाद्वीप के वासियों की भांति बिताते हैं, यद्यपि निस्सन्देह वे दूसरों से सुनते हैं कि वे चारों ओर समुद्र से घिरे हैं। फिर, किनारे पर के निवासी हाथी पकड़ने से विशेष जानकारी नहीं रखते और उसके विषय में केवल किम्वदन्ती ही द्वारा जानते हैं। उनका सारा पुरुषार्थ मछलियों तथा समुद्र के दुष्ट जीवों को पकड़ने में लगाया जाता है; क्योंकि कहा जाता है कि समुद्र जो इस द्वीप को घेरे है छोटी तथा भीषण जाति की मछलियों की अपार संख्या को उत्पन्न करता है; भीषण मछलियों में से कुछ ऐसी हैं जिनका सिर सिंह, चीते तथा और दूसरे बनैले पशुओं का सा, और प्रायः भेड़ों का सा भी होता है। और इससे भी बढ़कर जो आश्चर्य्य की बात है वह यह है कि वहां ऐसे विकराल जीव होते हैं जो अपने स्वरूप के समस्त अङ्ग में * सेटायर (Satyr) से मिलते हैं। दूसरे, स्वरूप में स्त्रियों के से होते हैं, किन्तु केशगुच्छ के स्थान पर ये कांटों से सुशोभित होते हैं। यह भी गंभीरता के साथ कहा जाता है कि इस समुद्र में कुछ विलक्षण आकृति के जीव होते हैं जिनको चित्र में प्रदर्शित करने में देश के चित्रकारों की समस्त कुशलता चक्कर में आ जायगी, यद्यपि भीषण भावना उत्पन्न करने के अभिप्राय से वे ऐसे ऐसे राक्षसों को चित्रित किया करते हैं जिनमें भिन्न भिन्न पशुओं के भिन्न भिन्न अवयव एक साथ जुड़े रहते हैं। उनकी पूंछ तथा वे भाग जो मुड़े रहते हैं, बड़ी लम्बाई के होते हैं, और पैर के स्थान पर उनके पंजे अथवा पर होते हैं। मैं ने यह भी सुना है कि वे जल और थल दोनों पर रहनेवाले हैं, और रात को चरागाहों में चरते हैं, क्योंकि वे चौपायों तथा उन चिड़ियों की तरह जो दाना बिनती हैं, घास खाते हैं। वे छोहारे को भी बड़ी चाह से खाते हैं अतएव जब वे पक कर पेड़ से गिरने को होते हैं वे अपने फेंटों को, जो लचीले तथा इस काम भर को बड़े होते हैं, इन

---

* एक कल्पित दैत्य है जिसका आधा शरीर मनुष्य का और आधा बकरी का होता है।

पेड़ों के चारों ओर लपेट देते हैं, और उन्हें ऐसे ज़ोर से हिलाते
कि छोहारे लड़खड़ाते हुए नीचे आ जाते हैं, और उन्हें एक उत्त
भोज प्रदान करते हैं। इसके पीछे जब रात धीरे धीरे हटने लग
है, किन्तु प्रथम इसके कि दिन का स्वच्छ प्रकाश हो जाता है
समुद्र में, जैसे ही उसकी सतह को प्रभात की प्रथम आभा किञ्चि
दीप्त करने लगती है, कूदकर अदृश्य हो जाते हैं। वे कहते
कि ह्वेल भी प्रायःइस समुद्र में आती है, यद्यपि यह सच नहीं है
वे किनारे के निकट आकर थन्नी(Thunnies) की ताक में पड़ी रहत
हैं। डालफ़िन (Dolphins) दो प्रकार की सुनी जाती है—एक द
दुष्ट और तीखे नोकवाले दांतों से संयुक्त होती है जो मछुवाहे क
असीम कष्ट देती है और दया रहित क्रूर प्रकृति की होती है, परन्
दूसरी जाति की स्वभावतः सीधी और पालतू होती है, क्रीड़ा के सा
इधर उधर तैरा करती है, और बिलकुल खेलाड़ी कुत्ते की तरह
होती है। जब कोई इसे मारने का यत्न करता है तब यह नहीं भागती
और जो भोजन इसे दिया जाता है उसे प्रसन्नता के साथ खाती है

(१६) समुद्री-खरहा, जिससे अब मेरा अभिप्राय उस जाति
से है जो महासागर में मिलती है (क्योंकि उस जाति की
मैं पहिलेही चरचा कर चुका हूं जो दूसरे समुद्र में मिलती
है), हर एक बात में स्थल के खरहे से *मिलता है केवल रोयें* को
छोड़ कर, जो स्थल पर के जन्तु का कोमल और चिकनाहट के साथ
नीचे गिरा रहता है, और छूने में गड़ता नहीं, पर इसके समुद्र के
बन्धु का बाल कड़ा और कँटीला होता है और जो कोई उसे छूता
है वह उसके घाव कर देता है। *कहा जाता है कि यह सामुद्रिक हिलोर*
के ऊपर ऊपर बिना नीचे डूबे हुए तैरा करता है और अपनी चाल
में बड़ा तेज़ होता है। *उसको जीता पकड़ना सहज बात नहीं है,*
क्योंकि यह कभी जाल में नहीं पड़ता और न बंसी की डोरी और
चारे के पास जाता है परन्तु, जब यह रोग से पीड़ित रहता है
और इस कारण तैरने में असमर्थ होकर किनारे पर पड़ा रहता
है, तब यदि कोई इसे अपने हाथ से छू लेता है *तो यदि चिकित्सा*
न हो तो उसकी मृत्यु हो जाती है—यही नहीं वरन् यदि कोई
इस मरे खरहे को डंडे से भी छू लेता है तो उसकी वही दशा होती

हैं जो उनकी जो विसखोपड़े * (Basilisk) को छूए रहते हैं। पर कहा जाता है कि इस टापू के किनारे किनारे हर एक की जानकारी में, एक ऐसी जड़ी ऊगती है जो उस मूर्च्छा की औषधि है जो उत्पन्न होती है। यह उस व्यक्ति की नाक के पास लाई जाती है जो मूर्च्छित रहता है, वह इससे संज्ञा लाभ करता है। किन्तु यदि यह औषधि न प्रयोग की जाय तो यह आघात प्राण का घातक ठहरता है, ऐसी विषैली वह शक्ति होती है जो यह खरहा अपने अधिकार में रखता है।

खण्ड १५ (ख) इसके आगे है †

---

* अथवा एक प्रकार का कल्पित सर्प जिसके नेत्र में विनाश-कारिणी शक्ति होती है।

† यही खण्ड है जिसमें एलियन (Ælian) एक सींगवाले उस जन्तु का वर्णन करता है। जिसे वह कर्त्तज़ोन (Kartazon) कहता है। रोज़िनमुलर (Rosenmuller), जिन्होंने यूनिकार्न (घोड़े के सदृश एक कल्पित पशु जिसके एक सींग होती है) के विषय में विस्तारपूर्वक लिखा है, उस पशु (यूनिकार्न) को हिन्दुस्तानी गैंड़े से मिलाते हैं और अनुमान करते हैं कि एरियन ने उसके वृत्तान्त को टीसियास (Ktesias) से लिया होगा और टीसियास ने, जब वह फारस में रहा उसकी लम्बी चौड़ी कथा सुनी रही होगी अथवा उसको वहां शिल्प में उसके यथार्थ रूप से कुछ भिन्न देखा होगा। टिचासिन (Tychsen) इस नाम की उत्पत्ति 'कर्द' (Kerd) और 'तज़न' (Tazan) से बतलाते हैं। 'कर्द' को ये महाशय स्वयं गैंडे का प्राचीन नाम बतलाते हैं। प्राचीनों ने एक सींगवाले तीन जन्तुओं का वर्णन किया है—अफ्रिका का मृग, हिन्दुस्तानी गदहा तथा यूनिकार्न।

(२२) एक और भी जाति * स्किराटई (Skiratai) नाम की है, जिसका देश भारतवर्ष के आगे है। ये गठीली नाक के होते हैं, या तो इस कारण कि बचपन की सुकुमार अवस्था ही में उनके नथुने दब जाते हैं, और उनके पश्चात् जीवन भर उसी प्रकार रहते हैं, अथवा उनकी इन्द्रिय का स्वाभाविक आकार ही ऐसा होता है। उनके देश में बड़े विशाल आकार के सर्प होते हैं, जिनमें से किसी किसी जाति के तो चौपायों को जब वे चरागाह में रहते हैं, पकड़ लेते हैं और उन्हें भक्षण कर जाते हैं, और दूसरी जाति के केवल रक्त चूसते हैं, जैसा कि 'एजिथेलई' (Aigithelai) यूनान में करते हैं, जिनकी चर्चा मैं पहिलेही उपयुक्त स्थान पर कर चुका हूँ।

* स्किराटई किरात से मिलाए गए हैं। प्रो० लैसन ने रामायण का एक श्लोक उद्धृत किया है जिसमें लिखा है, "किरात, जिनमें से कुछ तो मन्दराचल पर बसते हैं, दूसरे अपने कानों को ओढ़ते हैं; वे डरावने, काले, तथा एकही पैरवाले होते हैं, किन्तु बड़े फुर्तीले होते हैं, और विनष्ट नहीं किए जा सकते; वे वीर पुरुष तथा नरभक्षक हैं" (Schwanbeck p. 66) प्रो० लैसन इनकी एक शाखा को नैपाल में कौशी नदी के किनारे पर, और दूसरी को टिपरा में स्थित करते हैं।

मेगास्थिनीज़ समाप्त।

— o —